हिन्दू कौन है?

आसिंधु सिंधुपर्यन्ता यस्य भारत भूमिका ।
पितृभू पुण्यभूश्चैव स वै हिंदुरिति स्मृतः ।

हिंदू वह है जो सिंधु-नदी से सागरों तक के विस्तृत देश-हिंदुस्थान को अपनी पितृभूमि और पुण्यभूमि मानता है !

परिचय

हिन्दू-राष्ट्र के अमर रत्न स्वातंत्र्य वीर सावरकर महाराष्ट्र के उस पवित्र और कल्याणकारी प्रसिद्ध 'चितपावन' ब्राह्मण वंश में सन् १८८३ ई० में उत्पन्न हुए थे। जिसमें हमारी जाति, संस्कृति और राष्ट्र के उन्नायकों ने समय समय पर जन्म लेकर देश की महान सेवाएँ की हैं। चिरस्मरणीय पेशवा बाजीराव नाना साहब, गोखले, जस्टिस रानाडे, लोकमान्य तिलक आदि महापुरुष इसी वंश के देदिप्यमान नक्षत्र हैं जो आज भी हिन्दूराष्ट्र की आकाश-गङ्गा में जगमगा रहे हैं। वीर सावरकर के पिता दामोदरपन्त सावरकर थे। ये तीन भाई हैं जो 'सावरकर बन्धु' के नाम से प्रसिद्ध हैं। हमारे वीर सावरकर मझले हैं और उनका पूरानाम विनायक दामोदर सावरकर है। बड़े गणेश (बाबासाहब) और छोटे नारायण हैं। उनमें बाल्यकाल से ही दैवीय शक्तियां प्रतिभासित होने लगी थीं। सन् १६०१ में उन्होंने मैट्रिक और १६०५ में फर्ग्यूसन कालिज से बी० ए० की परीक्षा पास की। हिन्दू राष्ट्र के स्वप्न उन्हें विकल बना देते थे। इसी समय उन्होंने 'अभिनव भारत' संस्था की स्तापना की। बाद में जिसकी शाखाएँ यूरोपीय देशों में खोली गईं। सरकार को एक बार जिसने थर्रा दिया। इसके बाद आप इंगलैण्ड चले गए, जहां आपने अपनी क्रान्तिकारी भावों की लहरें सर्वत्र फैलाकर प्रवासी भारतीयों में अगाध देश-प्रेम भर दिया। 'इन्डिया हाउस' में आप प्रमुख व्यक्ति समझे जाने लगे थे। इसी समय आपने सन् ५७ के विप्लव पर

'स्वतन्त्रता का युद्ध' नामक पुस्तक लिखकर देश विदेश में हलचल उत्पन्न करदी। इस अल्पायु में ही उनकी वक्तृता, पाण्डित्य और साहस की धूम मच गई थी। क्रान्तिकारी! फिर सरकार क्यों चैन लेने देती। दीपक में प्रकाश होता है किन्तु जलने का अभिशाप भी। महापुरुषों में दिव्य गुण होते हैं किन्तु यातनाएँ उनके सर पर नाचा करती हैं। फलस्वरूप आपको द्विजन्म काला पानी हुआ। वीर ने वीरों की भांति पार्थिव संसार के मोह से नाता तोड़ उस कारावास का मार्ग लिया जहां की यातनाएँ उन भावनाओं को, महत्त्वकाक्षांओं और उच्च विचारों को नष्ट नहीं कर सकतीं। वह बन्धन इस नाशवान देह पर होता है आत्मा की प्रबल प्रेरणाओं पर नहीं। उनका विकास वहीं होता है। गणेश भी अंडमान थे और ये भी। १४ वर्ष तक अन्डमान की यातनाएँ सही—नारियल कूटा, रस्सी बांटी, कोल्हू चलाया, धैर्य से, अश्रान्त होकर, मनको निर्मूल समझकर। वे उन कारावासियों में से नहीं हैं जिन्होंने स्पेशल और ए क्लास की जेलों में रहकर विलासिता भोगी हो। फिर इतना लम्बा कारावास ५६ वर्ष—! जिसमें यौवन लेकर गये और बुढ़ापा लेकर लौटे, किन्तु जीवन का साध इसी में निहित है। स्वर्गीय हरदयाल, भाई परमानन्द, लाला लाजपतराय आदि के नाम यहां पर भुलाए नहीं जासकते। अन्डमान के पश्चात रत्नागिरी में आप नजरबन्द रहे किन्तु आपका उद्देश्य कहीं भी न रुका। रत्नागिरी से श्री जमनदास मेहता के अथक परिश्रम से आप स्वतंत्र किए गए।

वीर सावरकर में दैवत्त्व है, अदम्य साहस है, शेर की गर्जन

हैं हिन्दू राष्ट्र की प्रज्वलित ज्वाला है। वे इतिहास कार हैं, पण्डित हैं, कवि हैं, राजनीतिज्ञ हैं और सबसे अधिक सच्चे हिंदू हैं। उन्होंने देश, जाति और संस्कृति के लिए अपने जीवन को भट्टी में झोंक दिया, प्रलोभनों को लात मारदी तब राष्ट्र का कल्याण किया। वे तप कर ऋषि होगए, हिंदू-राष्ट्र के राष्ट्रपति होगए। वे राजर्षि ही हैं। उनका व्यक्तित्व भारत में सबसे ऊँचा है जिसके नीचे प्रत्येक व्यक्ति को श्रद्धा से अपना सर झुकाना पड़ेगा।

मेरा यही कहना है कि हममें यदि कुछ हिंदुत्व है, कुछ साहस है और कुछ श्रद्धा है तो इस महानायक के उद्देश्य को पूर्ण करें। उसके अनुयायी हों। जिससे हिंदू जाति, हिंदू संस्कृति और हिंद-राष्ट्र की फिर से विजय वैजयन्ति लहराने लगे।

प्रस्तुत पुस्तक स्वातंत्र्य वीर सावरकर की अंग्रेज़ी पुस्तक 'हिंदुत्व' का अनुवाद है। मैं अपना परिश्रम तभी सफल समझूंगा जब हिंदू नवयुवक इसमें जागृति पायें, प्रगतिशील बनें और समझें कि हम क्या हैं?

अन्त में मैं श्रीयुत इन्द्रप्रकाश जी, औनरेरी सेक्रेट्री हिंदू-महासभा, को धन्यवाद दिये बिना भी नहीं रह सकता, जिन्होंने इस अनुवाद के प्रकाशन का भार अपने ऊपर लेकर मुझे प्रोत्साहन दिया और हिंदू-नव-युवकों को एक आवश्यक पुस्तक इसके लिए मैं आपका बहुत कृतज्ञ हूं।

विनीत
ओमप्रकाश अग्रवाल

प्रस्तावना

मुझसे वीर सावरकर की पुस्तक 'हिंदुत्त्व' की प्रस्तावना लिखने को कहा गया है। मैं उसे बड़े आनन्द से लिख रहा हूं।

कभी कभी मेरे ऊपर इस बात का दोषारोपण होता है कि मैंने अपने मित्र वीरसावरकर को "राष्ट्रीयता" के पथ से हटाकर "साम्प्रदायिक" बना लिया है और घोर क्रान्तिकारी से महासभा का कट्टर पोषक। मुझे दुःख है कि मेरे आलोचक "राष्ट्रीयता" और "साम्प्रदायिकता" शब्दों का अर्थ नहीं समझते जिनको वे इतनी सरलता से प्रयोग में ले आते हैं। यह पुस्तक उनको सच्चा मार्ग दिखाने का कार्य करेगी यदि वे विवेक और व्यवहारिक ज्ञान से इसे समझने का प्रयत्न करेंगे। अन्डमन से वापिस आजाने पर जब श्रीयुत सावरकर का मुझसे सम्पर्क हुआ था, यह पुस्तक उससे भी बहुत पूर्व लिखी गई थी। और यह उन सब सिद्धान्तों और विचारों को व्यक्त करती है जिनका वे आज भी दृढ़ता से प्रचार कर रहे हैं। यह साधारण तत्त्व उस दोषारोपण को पूर्णतया निर्मूल कर देता है कि मैं उनमें जो परिवर्तन आगया है—यदि ऐसा कोई परिवर्तन आया है—उसका उत्तरदायी हूं। किन्तु क्या उनमें कोई परिवर्तन हुआ है? मेरा विश्वास है कि नहीं। श्रीयुत सावरकर देशभक्तों के राजकुमार हैं, वह हिंदू महासभा के सभापति हैं। इससे सिद्ध है कि देश-भक्ति हिन्दू महासभा का सर्व प्रथम सिद्धान्त है।

केवल छोटी श्रेणी के मनुष्य जब अपनी अल्प बुद्धि से सावरकर और महासभा को आंकते हैं तो वे महासभा में सम्मिलित होने में अपनी हानि समझते हैं। यदि वे इस प्रश्न पर ईर्ष्या रहित होकर तथा निश्पक्ष भावसे विचार करें और किसी प्राचीन रीति से या अफवाहों से प्रभावित न हों तो वे गम्भीरता से पूछेंगे कि देश भक्त सावरकर महासभा के सभापति क्यों हैं ? यदि एक ओर तो देशप्रेम और राष्ट्रीयता में और दूसरी ओर महासभा के सिद्धान्तों में तनिक भी मतभेद होता तो क्या वे इस पद को अपना सकते थे ?

मैं उनसे एक पद आगे बढ़कर पूछने के लिए कहूंगा कि सावरकर जिन्होंने कि मां के स्तनों से ही क्रान्ति का दूध पिया है—कांग्रेस को अपनाना असम्भव क्यों समझ लिया है, जैसा कि हमें आज दिखाई देरहा है ? इस शताब्दी के मनुष्य को युवक सावरकर का विस्मृत सा ध्यान है। वे इस तत्त्व से समझ सकते हैं कि उन दिनों की लिखी हुई उनकी पुस्तकें आज कांग्रेसी सरकार ने जब्त कर रक्खी हैं। कांग्रेस के मन्त्री सावरकर के विचारों को सहन नहीं कर सके, वे गवर्नर के मत दाताओं के लिए कहीं उत्तेजक हैं। मुझे विश्वास है कि यदि सावरकर के कारावास से मुक्त होने का प्रश्न इन कांग्रेस मन्त्रियों के सम्मुख रक्खा जाता तो वे अब तक निश्चय ही कारावास में पड़े रहते। ऐसा व्यक्ति जिसमें पवित्र राष्ट्रीयता और देशप्रेम की ज्वाला धधकती हो भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को अपनाने के अयोग्य है। हमें इस कारण का विवेचन करना चाहिए कि ऐसा क्यों हुआ ?

श्रीयुत सावरकर के कांग्रेस से अलग रहने का कारण यह है कि कांग्रेसी राष्ट्रीयता ने देश को भारी क्षति पहुँचाई है। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने सच्ची भारतीय राष्ट्रीयता का नाश करडाला है। यह कहना कठिन है। किन्तु यह सत्य है और सत्य सदैव दुःखान्त होता है। मेरे लिखने के समय प्रस्तावित मुस्लिम विधान की सूचना मुझे मिलती है। यह कांग्रेस की हिंदुओं के प्रति शत्रुता रखने और मुस्लिम धर्मोन्माद के लिए जिसे सच्ची "राष्ट्रीयता" कहा गया है—आत्म समर्पण कर देने की नीति का परिणाम है। श्रीयुत सावरकर "राष्ट्रीयता" की इस परिभाषा से बहुत मतभेद रखते हैं और इसीलिए ऐसी संस्था को अपनाना नहीं चाहते जिसकी वैसी परिभाषा हो।

श्रीयुत सावरकर का हिंदुओं और हिन्दुस्थान के प्रति अगाध प्रेम है। उस प्रेम की गहराई में से ही उनकी राष्ट्रीयता और देशभक्ति उत्पन्न होते हैं। वे राष्ट्र को भिन्न भिन्न जातियों के व्यक्तियों से आबाद भूखण्डों को ही नहीं मानते। वह एक भौतिक एकता है, जिसका विगत में सार्वजनिक इतिहास रहा है, वर्तमान अस्तित्व भी सार्वजनिक है और भविष्य के लिए जिसकी महत्त्वाकांक्षाएं भी सार्वजनिक ही हैं। किन्तु श्रीयुत सावरकर उन जातियों के शत्रु नही हैं जो इस देश में निवास करती हुई भी हमारे प्राचीन इतिहास पर गौरव नहीं रखतीं, वर्तमान संग्राम में अपने आपको अलग रखती हैं तथा भविष्य की आशाओं में भी सहयोग नहीं देतीं। इनको वे विश्वास दिलाते हैं कि उनकी संस्कृति, भाषा तथा धर्म सुरक्षित रहेंगे।

वह अपनी जाति के लिए किसी प्रकार भी कोई विशेष अधिकार या सुविधा नहीं चाहते, साथ ही अन्य जातियों के ऊपर कोई प्रतिबन्ध या हानियां नहीं लादना चाहते। किन्तु वे यहकभी सहन नहीं कर सकते कि राष्ट्रीयता की नींव पर अराष्ट्रीयता का कुल्लाड़ाघात हो।

मैं इस प्रस्तावना में इस पुस्तक के विषय में कुछ नहीं कहूंगा और उसकी प्रतीक्षा करूंगा कि पाठक अगले पृष्ठों में क्या पढ़ते हैं। मैं उनसे यही कहूंगा कि उसमें भरी भावना को समझें और इस भ्रम को सदा के लिए एक बार ही त्याग दें कि हिन्दु होना अराष्ट्रीय होना है, और उसे मातृभूमि के उस महान पुत्र के चरणों में सिर नवाकर यह सीखना है कि हम अपने भविष्य को उतना महान तभी बना सकते हैं जबकि हमारे मनमें अपनी प्राचीन महानता के प्रति प्रेम और श्रद्धा हो। उन निराशाओं के अतिरिक्त जो कभी कभी मेरे मन में उठती हैं मेरा हिंदुओं के उज्वल भविष्य में पूर्ण विश्वास है और आज वह भविष्य उस ज्योति से प्रकाशित होने लगा है जिससे हमारे गौरव स्वातन्त्र्य वीर सावरकर देदिप्यमान हैं।

—भाई परमानन्द

❀ ओ३म् ❀

हिन्दुत्व

हिन्दुत्व की विशेषताएं

—○○—

हम आशा करते हैं कि वैरोना की सुन्दर राजकुमारी जिसने कि अपने प्रेमी से नाम बदलने की उत्तेजित अपील की थी जो कि न हाथ न था, न पैर था, न आस्तीन था, न मुख था और न मनुष्य की देह का कोई और ही अङ्ग था, हमें हमारी मूर्ति-पूजक प्रीति के लिए क्षमा करेंगी। क्योंकि हम निर्भयता से कह सकते हैं कि "हम हिन्दू हैं और हिन्दू ही रहना चाहते हैं।" हम भी यदि उस पवित्र सन्यासी (*Friar*) की सी परिस्थिति में होते तो उसके युवा-प्रेमी को इस तर्क के सुन्दर प्रभाव को मानने का आदेश देते जिससेइतनी गम्भीरता से प्रकट था कि "नाम में क्या धरा है? जिसे हम गुलाब कहते हैं वह किसी अन्य नाम से भी उतनी ही सुगन्धि देगा।" क्योंकि वस्तुओं का उनके नाम की अपेक्षा अधिक महत्त्व है। विशेष कर तब जब कि दो वस्तुओं में से छांटनी हों या तब जब कि उनका समूह नया और सादा हो। यह बात कि एक वस्तु दर्जनों भाषाओं में दर्जनों नामों से दर्शायी जाती है और शब्द एवं उसके द्वारा सूचित भाव

में एक सतत और प्राकृतिक सम्बन्ध है, हमारे सन्देह को दूर कर देती है। तिस पर भी जैसे जैसे शब्द का वस्तु से सम्बन्ध बढ़ता जाता है और निश्चित होता जाता है वह धारा जो कि चेतना की दो अवस्थाओं को मिलाती है, एक से दूसरे की ओर स्वाभाविक विचारों का सम्वाहन करती रहती है और अन्त में उनका प्रथक करना प्रायः असम्भव सा ही हो जाता है। इसके अतिरिक्त जब बहुत से विचार अथवा भाव जो उस वस्तु से उत्पन्न होते हैं उस शब्द से जो उस वस्तु का नाम है गुप्त रूप से मिल जाते हैं, तब नाम वस्तु के समान ही आवश्यक मालूम पड़ता है। क्या धर्म के प्रचारक पवित्र अपोसल (ईश्वर दूत) ने जिसने कि मार्मिक शब्दों में कहा था कि "नाम में क्या धरा है?" अपने आप भी अपने इष्ट-देव का नाम रोमियो के बजाय पेरिस रखना उचित समझा है? या वह इस बात पर चन्द्रमा की जिसने फल के वृक्षों की चोटियों को शुभ्र-प्रकाश से प्रकाशित किया था, सौगन्ध खाने को तैयार हो गए होते कि उनके हृदय की अपनी प्रेमिका जूलियट को किसी अन्य नाम जैसे रोज़ेलिन से पुकारा जाना भी उतना ही मधुर और रागमय प्रतीत होगा। नहीं, इससे भी अधिक कुछ शब्द हैं जो कि स्वयं या तो एक मिश्रित विचार होते हैं, आदर्श होते हैं या एक गौण निर्देश होते हैं जो स्वयं ही उत्पन्न होते रहते हैं या कीटाणुओं की भांति जन्मते रहते हैं। ऐसे नाम भले ही वे हाथ न हों, पैर न हों, न मनुष्य की देह के कोई अङ्ग ही हों सब कुछ वैसे ही नहीं हैं। क्योंकि सचमुच में वे भी मनुष्य की आत्मा ही होते हैं। वे स्वयं एक विचार बन जाते हैं

जो मनुष्य की पीढ़ियों से भी अधिक जीवित रहते हैं। जीसस मर चुके किन्तु ईसा (क्राइस्ट) ने रोमन सम्राटों एवं साम्राज्य को फिर से जीवन प्रदान किया। स्पेन का निवासी मैडोना के सुन्दर चित्र के नीचे फ़ातिमा के खुदे हुए नाम को उतनी ही उत्सुकता से देखता रहेगा जितनी कि किसी और कलात्मक वस्तु को इससे वे मैडोना का नाम भी जीवित रखते हैं। उसके घुटने अपना बल छोड़ कर झुक जाते हैं, नेत्र चंचलता छोड़ कर उसकी अनुभूति की प्रशंसा करने के लिए अन्तर्मग्न हो जाते हैं, और उसकी समस्त सत्ता दैविक मातृत्व और अनुराग की विभूति में लय हो जाती है। नाम में क्या धरा है ? आह अयोध्या को होनोलूलू कहने लगते या उसके अमर राजकुमार को 'पहूवल' अथवा अमेरिका-निवासियों से कहो कि वाशिंगटन को चंगेज़खां कहने लगें एक मुसलमान से कहो कि वह यहूदी कहलाने लगे तब तमको शीघ्र ही पता चल जावेगा कि "सीसेम खुलो" अपनी सानी का केवल एक ही शब्द नहीं है।

इस श्रेणी के नामों में से जोकि मानव-समाज के लिए जीवन और उत्साह के सरल उद्गम हैं, हिन्दुत्व भी है, जिसकी आवश्यक प्रकृति और महत्ता का मालूम करना ही हमारा उद्देश्य है। परम्परा और आदर्श, वर्ग [और समाज, विचार और भावनाएं जो कि इस नाम के चारों ओर केन्द्रित हैं इतने भिन्न और उन्नत हैं, इतने शक्तिशाली और सरल हैं, इतने अगम्य पर इतने स्पष्ट हैं कि 'हिन्दुत्त्व' शब्द सब विश्लेषणात्मल प्रयत्नों को विफल कर देता है। यदि अधिक भी नहीं तो चालीस

शताब्दियों ने इसका यह स्वरूप निर्धारण करने में महान प्रयत्न किया है। भविष्य-वक्ता और कवि, न्याय-निपुण और शास्त्रकार, वीर और ऐतिहासज्ञ इसके रूप-निर्माण के विचारों में डूबे हैं, इसके लिए जिए हैं, लड़े हैं और मरे हैं। क्योंकि सचमुच में यह हमारी समस्त जाति के उन असंख्य कार्यों का परिणाम नहीं है जिनमें अब विरोध भी है और समानता तथा सहयोग भी है। हिन्दुत्त्व कोई शब्द नहीं है वरन् एक इतिहास है। यह न केवल हमारी जाति का आध्यात्मिक अथवा धार्मिक इतिहास ही है जैसा कि समय समय पर भूल से समानवाचक 'हिन्दू धर्म' शब्द से समझ लिया जाता है वरन् स्वयं एक इतिहास है। हिन्दू-धर्म उससे उपजा हुआ एक शब्द है, एक भिन्न है, 'हिन्दुत्त्व' का एक भाग है। जबतक कि यह साफ साफ न बतला दिया जावे कि हिन्दुत्त्व का क्या तात्पर्य है, पहला शब्द सुबोध और प्रत्यक्ष नहीं रहता। इन दो शब्दों के अन्तर तथा भाव के स्पष्ट न होने से उन समाजों में जिन्होंने कि हिन्दू-सभ्यता के अमूल्य और सार्वलौकिक कोष को अपनाया है बड़ा भारी भ्रम उत्पन्न कर दिया है। इन शब्दों के अर्थों में मुख्यतया क्या क्या अन्तर है, हमारे तर्क के अनुसार, स्पष्ट हो जावेगा यहां यही कहना पर्याप्त होगा कि 'हिन्दुत्त्व' 'हिन्दू धर्म' से सूचित भाव का पर्यायवाची नहीं है। धर्म या वाद से साधारणतया सिद्धान्त या धर्म-ग्रन्थ का बोध होता है जोकि थोड़े-बहुत धार्मिक सिद्धान्तों पर निर्भर रहते हैं। किन्तु जब हम हिन्दुत्त्व के आवश्यक अभिप्राय का अनुसन्धान करते हैं तो हमारा किसी

विशेष सैद्धान्तिक या धार्मिक भाव या मत से अभिप्राय नहीं है। यदि भाषा शास्त्र के अनुसार शब्दों का प्रचलित भाव हमारे बीच में न पड़ता तो 'हिन्दुपन' 'हिन्दू-धर्म' से अवश्य ही उपयुक्त शब्द था जोकि हिन्दुत्त्व का पर्यायवाची हो सकता था। हिन्दुत्त्व हमारी सर्वांग हिन्दू जाति के विचार और कार्यों के समस्त भागों को अपनाता है। अतएव इस हिन्दुत्त्व शब्द की महत्ता समझने के लिए हमें सर्व प्रथम 'हिन्दू' शब्द का मुख्य भाव समझलेना चाहिए और यह भी अनुभव करना चाहिए कि किस प्रकार यह शब्द मानव जाति के लाखों-पर-लाखों हृदयों को प्रभावित कर सका है और उनमें से शक्ति शाली एवं सर्व श्रेष्ठ पुरुषों ने किस प्रकार प्रेमासक्ति से अपनाया है। इसे सिद्ध करने से पहिले यह बतलाना आवश्यक है कि हम किसी प्रकार भी कोई ऐसी परिभाषा अथवा संकुचित वर्णन नहीं दे रहे हैं जो सन्तोष प्रद न हो, विशेषकर मतमतान्तरों से पूर्ण 'हिन्दू-धर्म' में। हमें कितनी सफलता मिलती है या हम यह सिद्ध करने में न्याय-संगत हैं जैसे जैसे आगे चलेंगे प्रतीत होगा।

— २ —

यद्यपि पौर्वात्य अनुसन्धान की इस अवस्था पर निश्चित रूप से उस काल को बतलाना जब कि पराक्रमी आर्यों के सर्व प्रथम समूह ने सिन्धु *(Indus)* के तट को अपना घर बनाया और वहां यज्ञ की सर्वप्रथम अग्नि जलाई सन्देह युक्त होगा तथापि यह निश्चित है कि मिश्र के एवं बाबुलमन्दप के प्राचीन निवासियों की विशाल सभ्यता के निर्माण से भी बहुत पूर्व सिन्धु का पवित्र जल महायज्ञों के देदिप्यमान तथा सुगन्धित धूम और और घाटियों में प्रतिदिन वैदिक-मन्त्रों की गुंजार का साक्षी रहा है वह आध्यात्मिक शक्ति थी जिसने उनकी आत्मा को जीवन दिया था। आश्चर्यजनक वीरत्व जिसने उनके महान उद्योगों को प्रगति दी थी और उनके पवित्र विचारों की उच्चता आदि ने स्पष्ट कर दिया कि वे एक राष्ट्र थे जिनके द्वारा एक महान और चिरस्थायी सभ्यता का निर्माण भवितव्य था। समयानुसार उन्होंने अपने आपको अपने मित्रों एवं पड़ौसियों से निश्चय ही अलग कर लिया था विशेषकर पारसियों से; आर्य सात-नदियों या सप्त-सिन्धुओं से दूर तक फैल चुके थे और न केवल उन्होंने राष्ट्रीयता की भावना ही जागृत की थी वरन् उसको स्थानीय निवासस्थान बनाने और उसका नाम रखने में पहले ही सफलता प्राप्त करली थी। उर्वरा व सतत बहने वाली एवं जाल की भान्ति

बिछी हुई नदियों की जो देश में स्नायु-तन्तु सी फैली हुई थीं और जिन्होंने उसे जीवित-स्वरूप दिया था स्वभावतः ही सप्तसिन्धुओं का नाम दिया जो संसार के सबसे पुराने प्रमाण स्वयं ऋग्वेद में भी समस्त वैदिक भारत का बोधक था। आर्य अथवा कृषक जैसा कि वे विशेषकर थे हम उनके दैवी प्रेम और श्रद्धा को भली प्रकार समझ सकते हैं जो उन्होंने इन सात नदियों के प्रति दिखलाया जिनमें सर्व श्रेष्ठ नदी सिन्धु थी, वह उनके लिए समानरूप से सार्वलौकिक राष्ट्रीयता और संस्कृति का प्रत्यक्ष प्रतिरूप थी; "इमा आपः शिवतमा इमा राष्ट्रस्य भेषजीः। इमा राष्ट्रस्य वर्धनीरिमा राष्ट्र भृतोपमाः ॥"

भारतीयों को अपनी अग्रगामी यात्रा में बहुत सी नदियां मिलीं जो उनके समान ही मनोहर और उपजाऊ थीं किन्तु, वे सप्तसिन्धु के प्रति दर्शाये अनुराग और उपासना को न भुला सके, जिसने कि उनको राष्ट्र का स्वरूप दिया था और वह नाम भेंट किया था जिससे उनके पूर्वजों को राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक एकता की भावना को जागृत करने की क्षमता मिली। तब से अबतक कोई भी सिन्धु-हिन्दू जहां कहीं भी होगा कृतज्ञता से इन्हें स्मरण रक्खेगा और लाक्षणिक रूप में इन नदियों की उपस्थिति की प्रार्थना करेगा कि वे उसकी आत्मा को पवित्र और पोषित करें। "इमं में गंगे यमुने सरस्वति शुतुद्रिस्तोम सचता परुष्ण्या। असिकन्यामरुद्वृधेवित-स्तयार्जीकीयेश्रुणह्यासु षोमिया। गंगे व यमुने चैव गोदावरि सरस्वति॥ नर्मदे सिन्धु कावेरी जलेस्मिन् सन्निधिंकुरु ॥"

ये न केवल आपस में ही सिन्धु कहलाते थे वरन् हमारे पास इसके भी निश्चित प्रमाण हैं कि अपने निकटस्थ रष्ट्रों में कम से कम एक में तो अवश्य ही उसी नाम सप्तसिन्धु से पुकारे जाते थे। किसी समय संस्कृत का स (*S*) सब्दांश भारतीय और अभारतीय दोनों प्राकृत भाषाओं के 'ह' में परिवर्तित होजाता था। उदाहरण के लिए 'सप्त' शब्द 'हप्त' होगया है। न केवल भारतीय प्राकृत भाषाओं में ही वरन् योरूप की भाषाओं में भी; हमारी भाषा में हप्ता है (एक सप्ताह) और हेप्टार्की *(Heptarchy)* योरूप में। संस्कृत का केसरी प्राचीन हिन्दी में केहरी होजाता है। सरस्वती फ़ारसी भाषा में हरहवती और असुर अहुर होजाता है। और तब हमें ठीक पता चलता है कि हमारे राष्ट्र का वैदिक नाम 'सप्तसिन्धु' अवस्ता भाषा में प्राचीन पारसियों द्वारा 'हप्तहिन्दू' लिखा गया है। अतएव इतिहास के आरम्भ में ही हम अपने आप को सिन्धुओं या हिन्दुओं के राष्ट्र से सम्बन्धित पाते हैं। यह तत्त्व हमारे विद्वज्जनों को पौराणिक काल में भी भली प्रकार ज्ञात था। म्लेच्छ भाषाओं में से बहुत सी केवल संस्कृत भाषा की शाखा मात्र ही थीं।

इस सिद्धान्त की व्याख्या करके भविष्य पुराण इस तथ्य को स्पष्टतया बतलाता है--"संस्कृतस्यैव वाणी तु भारतंवर्षमुह्यताम्। अन्येखण्डेगता सैव म्लेच्छाह्यानंदि नोड भवन्। पितृ पैतर भ्राताच बादरः स्पतिरेवच। सेति सा यावनी भाषा ह्यश्वश्चास्यस्तथा पुनः ॥ जानुस्थाने जैनशब्दः सप्तसिन्धुस्तथैव च। हप्तहिन्दुर्यावनी च पुनर्ज्ञेया गुरुण्डिका ॥" (प्रतिसर्ग पर्व अ० ५) अतएव निश्चित

रूप से यह जानते हुए कि पारसी लोग वैदिक आर्यों को हिन्दू कहकर सूचित करते थे और यह भी जानते हुए कि हम साधारणतया विदेशी एवं अज्ञात मनुष्य को उसी शब्द से पुकारते हैं जिससे कि वह उन लोगों को ज्ञात है, जिनके द्वारा हमने उसे जाना है, निर्भय ही हम यह परिणाम निकाल सकते हैं कि दूरस्थ राष्ट्रों में से अधिकतर जो कि उस समय समुन्नत थे अवश्य ही हमारे देश और राष्ट्र का वही विशेषण 'हिन्दू' प्रयोग में लाते होंगे जैसा कि प्राचीन पारस्सियों ने भी किया था। केवल यहीं नहीं, सप्तसिन्धुओं के प्रदेश में कहीं कहीं फैले हुए आदि-निवासी-वर्ग भी अपनी बोलियों में भाषा-शास्त्र के उसी नियम के अनुसार आर्यों को हिन्दू नाम से ही जानते रहे होंगे। आगे भी, जैसे ही वैदिक संस्कृत ने भारतीय प्राकृतों को जन्म दिया जो सिन्धुओं और अन्य मिली हुई तथा वर्ण-संकर जातियों की सन्तति की मातृ-भाषा होगई थीं इन्होंने भी बिना किसी विदेशी-लोगों के प्रभाव से अपने आपको हिन्दू कहा होगा। क्योंकि, संस्कृत का स भारतीय प्राकृत भाषाओं में भी अभारतीय प्राकृतों की भान्ति ही ह में परिणत हो जाता है। इस लिए जहां तक निश्चित प्रमाणों से संबन्ध है यह निर्विवाद स्पष्ट है कि हमारे राष्ट्र और जाति निर्देश के लिए हमारी जाति के आदि-ऋषियों ने सर्व प्रथम और सम्भवतः प्रारम्भिक नाम सप्तसिन्धु या हप्तहिन्दू ही रक्खा है और प्रायः उस समय के समस्त प्रसिद्ध राष्ट्र, ऐसा ज्ञात होता है कि हमारे विशेषतया सिन्धुओं या हिन्दुओं से ही हमें जानते थे।

अबतक हमने लिखित प्रमाणों की सच्चाई का ही अनुकारण किया है किन्तु इस समय हम अनुमान का आश्रय लिये विना भी नहीं रह सकते। अब तक हमने आर्यों के प्रारम्भिक घर के विषय में कोई सिद्धान्त निर्धारण करने में अपना मत स्थिर नहीं किया है। लेकिन, यदि उनके भारत में आने का वही सिद्धान्त माना जावे जिसे प्रायः सब ही ने स्वीकार किया है तो उन नामों की उत्पत्ति के विषय में स्वाभाविक उत्सुकता उत्पन्न होती है जो कि उन्होंने अपने अपनाए हुए घर के दृश्यों के रक्खे थे। क्या उन्होंने उन सब नामों को अपनी ही भाषा से बनाया था ? क्या वे ऐसा कर सकते थे ? क्या यह साधारणतया सत्य नहीं है कि जब हमें कोई नवीन दृश्य दिखलाई पड़ता है या जब हम किसी नवीन देश में घुसते हैं तो हम उन्हें उन्हीं नामों से पुकारते हैं जिनसे कि उनको वहां के आदि निवासी जानते हैं हां हमारी रुचि या वाचिक-योग्यता के अनुसार कुछ परिवर्तित रूप हो सकता है ? निःसन्देह, कभी कभी हम नवीन दृश्यों को उन्हीं नामों से पुकारना पसन्द करते हैं जो कि पुराने नामों से मिलते जुलते होते हैं विशेषकर जब किसी निर्मल और कम बसे हुए महाद्वीप में नवीन उपनिवेश स्थापित होते हैं। किन्तु यह व्याख्या तभी सन्तोषजनक हो सकती है जब यह सिद्ध होजाये कि नवे स्थान का रक्खा हुआ नाम पहिले ही से प्राचीन देश में वर्तमान था, तब भी यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि नवीन दृश्यों को उनके पुराने नामों से पुकारे जाने की अन्य परिपाटी का सार्वलौकिक अनुकरण

किया जाता है। हम यह निश्चत रूप से जानते हैं कि सप्तसिन्धुओं का प्रदेश फैले हुए मनुष्य-समूहों *(Tribes)* से बसा हुआ था यद्यपि जनसंख्या बहुत ही कम थी। उनमें से कुछ ने नवीन आये हुए मनुष्यों से मित्र-भाव रक्खा और यह भी प्रायः निश्चित ही है कि बहुत से व्यक्तियों ने आर्यों की पथ-प्रदर्शक की भान्ति सेवा की थी और उनको नवीन दृश्यों के स्वभाव एवं नामों का परिचय दिया था, जिनके लिए आर्य केवल स्थानीय परदेशी ही थे। "विद्याधराप्सरोय क्षरक्षोगंधर्वकिन्नराः" आर्यों के पूर्णतया विरोधी नहीं थे, क्योंकि कभी कभी उनको दयावन्त और उत्तम स्वभाव वाले मनुष्य भी कहा गया है। अतएव यह सम्भव है कि देश के आदि निवासियों द्वारा इन महानदियों के रक्खे हुए नामों को आर्यों ने संस्कृतमय बनाकर अपना लिया हो। उन मनुष्यों के एवं उनकी भाषा के विस्तार में इस प्रकार के हमारे पास अनेक प्रमाण हैं; जैसे शलकटंकटा, मलय, मिलिंद, अलसदा *(Alexandria)*, सुलूव *(Selucus)* आदि आदि। यह ठीक है तो यह भी सम्भव है कि महानदी सिन्धु *(Indus)* को हमारे देश के आदि निवासी हिन्दू कहते हों और आर्यों की वाचक विलक्षणता के कारण वह सिन्धु में बदल गई हो जब कि उन्होंने उसी नियम के अनुसार इसे अपनाया जिससे कि स किसी समय ह का संस्कृतरूप ही था। अतएव इस देश और उसके निवासियों का यह नाम हिन्दू अज्ञात समय से रहा है, यहां तक कि वैदिक नाम सिन्धु उसका गौण एवं उत्तर रूप है। यदि सिन्धु शब्द की उत्पत्ति का अनुमान इतिहास के उदयन में

लगाया जाता है तो हिन्दू शब्द की प्राचीनता की तिथी इस काल से इतनी पूर्व बैठती है कि पौराणिक गाथा भी उसका कुछ पता नहीं देती और उसका उद्गम बताने में असमर्थ होती है।

सिन्धुओं या हिन्दुओं के समान शूरवीर पुरुषों का कार्य क्षेत्र पचंनद या पंजाब की छोटी सी सीमा में ही आवद्ध नहीं रह सकता था। विस्तीर्ण और उपजाऊ मैदान किसी शक्ति शाली और तेजस्वी जाति के प्रयत्नों को दूर ही से निमन्त्रित कर रहे थे। हिन्दुओं के समुदाए के समुदाए अपने देश से निकल पड़े जिनको एक महान उद्देश्य की भावना और यज्ञ-अग्नि ने पथ दर्शाया जो उनके प्रतीक ही थे; उन्होंने शीघ्र ही विस्तीर्ण, वंजड़ और कम आबाद देशों को प्राप्त कर लिया। जंगलों को साफ किया कास्तकारी समुन्नत हुई, नगर बस गए, राज्य स्थापित हुए-मानव-कर के स्पर्श से जंगली और बिखरी हुई प्रकृति की सम्पूर्ण आकृति को बदल डाला। किन्तु जब ये महान कार्य सम्पन्न हो रहे थे आर्य अपनी व्यक्तिगत रूचि के अनुसार समुन्नत हो चुके थे और उनकी नवीन वातावरण की मांगें एक नीति बन चुकी थीं जो कि अव्यवस्थित रूप में केन्द्रित थीं। जैसे जैसे समय बीता, उनके नवीन उपनिवेशों की सीमा भी बढ़ती गई, और अन्य परम उन्नत वर्गों को भिन्न भिन्न मनुष्य उनकी संस्कृति को अपनाने लगे। अनेक बस्तियां अपने आप में केन्द्रित ही अपना राजनीतिक जीवन व्यतीत करने लगीं। नवीन सम्पति पर न्याय युक्त अधिकार हो चुका था, यद्यपि वे

पुराने अधिकारों को नष्ट नहीं कर सके थे, तिसपर भी तबतक अधिकाधिक शक्तिशाली और सुव्यस्थित होते गए जबतक कि प्राचीन भाषा तथा नामों ने नवीन नामों को स्थान न दे दिया। कुछ ने अपने आप को कुरु कहना आरम्भ किया, कुछने काशी या विदेह या मगध, इसी समय हिन्दुओं या सिन्धुओं का पुराना व्यापक नाम सर्व प्रथम लुप्त हुआ और बाद में प्रायः भुला ही दिया गया। यह नहीं कि राष्ट्रीय और सांस्कृतिक एकता की भावना नष्ट होगई थी वरन् उसने अन्य रूप और नाम धारण कर लिया था, जिनमें राजनैतिक दृष्टि से चक्रवर्तिन् की संस्था प्रमुख थी। अन्त में सिन्धुओं के एक राष्ट्र और देश की स्थापना करने का महान् उद्देश्य पूर्ण हुआ और उसका भौगोलिक विस्तार चरम सीमा को पहुंच गया था जब अयोध्या के वीर राजकुमार ने लंका में विजयी पदार्पण किया और वस्तुतः हिमालय से सागर तक समस्त देश एक राज्य सत्ता में मिला लिया था। उस दिन जब विजयी अश्व अयोध्या को लौटा जिसका कोई प्रतिकार न कर सका और न कर ही सकता था, वीर और सत्शील रामचन्द्र की चक्रवर्ती गद्दी पर साम्राज्य का विस्तृत शुभ्र छत्र फैलाया गया और उनके प्रति न केवल आर्यवंश के राजकुमारों ने ही वरन् दक्षिण के हनुमान-सुग्रीव-विभिषण आदि ने भी हार्दिक राज्यभक्ति निभाने की प्रतिज्ञा की थी, वही दिवस हमारी हिन्दू जाति का जन्म दिवस था। वह वस्तुतः हमारा राष्ट्रीय दिवस थाः क्योंकि आर्य और अनार्य एक जाति में संयुक्त हो गए थे और उनमें सच्ची राष्ट्रीयता का जन्म होगया था।

उसने अपने पुरखाओं के सब प्रयत्नों को एकत्रित कर दिया और उनसे राजनैतिक सफलता प्राप्त की जिससे वह एक नवीन और सार्वलौकिक आदर्श, सार्वलौकिक पताका और सार्वलौकिक हित को उत्पन्न कर सकी जिसकी रक्षा के लिए उसके बाद की समस्त वंश-परम्परा अचेतन अवस्था में भी लड़ी और मरी है।

संयोगिक विचार किसी ऐसे शब्द से जो कि अधिक भाव दर्शाता हो और जो उसके भाव का पूर्णतया वर्णन कर सकता हो, अधिक पुष्ट होता है। आर्यावर्त और ब्रह्मवर्त शब्द इतने उपयुक्त नहीं थे कि उस महान संयोग को पूर्णतया प्रदर्शित कर सकें जिसने कि सिन्धु नदी से सागर तक के समस्त महाद्वीप को अपनाया था और उसे एक राष्ट्र बनाने का लक्ष्य किया था। आर्यावर्त जैसा कि प्राचीन लेखकों ने बतलाया है हिमालय और विन्ध्या के बीच का विस्तृत देश था। "आर्यावर्तः पुण्य भूमिर्मध्यं विन्ध्याहिमालयोः"। यद्यपि यह उन परस्थितियों के पूर्णतया अनुकूल था जिनमें उसका जन्म हुआ था, तिस पर भी वह उस राष्ट्र का जिसमें अनार्य और आर्य एक जाति में मिल चुके थे और जिन्होने उनकी संस्कृति और साम्राज्य को विन्ध्यागिरि की उच्च शिखाओं से भी दूर फैलाया था, एक सार्वलौकिक नाम न होसका। जिस समय राजा भरत के कुल का सारे जगत में प्रभुत्त्व छाया हुआ था, तभी एक ऐसे उपयुक्त शब्द की आवश्यकता का अनुभव

किया गया जिससे कि भारतीय राष्ट्र की विस्तृत भावना को पूर्णतया दर्शाया जासके। बिना इसका अनुमान किए ही कि ये भरत वैदिक भरत थे या जैन भरत थे अथवा उनका राज्य-काल कब था, हमारे लिए यहां पर यही जान लेना काफी होगा कि उनका नाम न केवल अपनाया ही गया था वरन् आर्यावर्त और दक्षिणापथ के मनुष्य उस समुन्नत विशेषण से अपनी मातृभूमि और सार्वजनिक संस्कृति के साम्राज्य को पुकारने में अत्यन्त आनन्द प्राप्त करते थे। अतएव जैसे ही क्षितिज दक्षिण की ओर मुखरित हुआ हमें पता चला कि हमारी सभ्यता का केन्द्र सप्त सिन्धुओं से गङ्गा की भूमि में आगया और सप्तसिन्धु या आर्यावर्त या दक्षिणापथ के स्थान पर अधिक राजनैतिक विस्तृत शब्द भरतखण्ड आगया जिसमें हिमालय आदि सागरों के बीच का समस्त देश सम्मिलित था। यह हमारे राष्ट्र की उस परिभाषा से जो कि उस समय बनाई गई थी जबकि हमारे विचारकों के मनों में इसका उच्च विचार उदय हो रहा होगा, साफ साफ दर्शाया गया है। हमें अबतक एक राष्ट्र के रूप में प्रदर्शित करने की परिभाषा का विष्णु पुराण के इस संक्षिप्त कथन से उत्ताम और कोई उल्लेख नही मिला! "उत्तरयत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्। वर्षं तद्भारतं नाम भारती यत्र सन्ततिः॥" किन्तु यह शब्द भारतवर्ष हमारे प्रारम्भिक नाम सिन्धुओं या हिन्दुओं को पूर्णतया नहीं दबा सका और न यह हमारी नदियों की नदी सिन्धु की प्रीति को ही भुला सका जिसके तट पर हमारे पुरखाओं ने जीवन दायक दूध पिया था। सिन्धु नदी के तटस्थ हमारे सीमा

प्रदेश अब भी सिन्धु राष्ट्र के नाम से प्रचलित हैं और समस्त संस्कृत साहित्य से हमें पता चलता है कि सिन्धु सौवीर हमारी सामुहिक-नीति के मुख्य अंग समझे जाते थे। महाभारत के युद्ध में सिन्धु सौवीर के राजा का प्रमुख स्थान था और कहा जाता है कि भारतीयों से उसका निकट सम्बन्ध था। यद्यपि सिन्धुराष्ट्र की सीमा समय समय पर बदलती रही, तिस पर भी मनुष्यों की प्रचलित भाषा ने तब भी और अब भी उनको स्वयं एक राष्ट्र सिद्ध किया है जिसका विस्तार मुल्तान से सागर तक था और जिनका नाम सिन्धी जो कि अब तक भी है हमें याद दिलाता है कि जो उसको बोलते हैं सिन्धु हैं और भारतीय जाति की सम्पूर्ण-प्रजा में भौगोलिक एवं राजनैतिक संघ मानने योग्य हैं। यद्यपि भरतखण्ड को हमारा प्रारम्भिक नाम दबाने में सफलता मिली पर विदेशी राष्ट्रों ने उस पर कुछ ध्यान न दिया और हमारे सीमाप्रान्तों का पुराना नाम ही प्रचलित रहने से हमारे सन्निकट के पड़ौसी अवस्ता के पारसी, यहूदी मिश्री तथा और भी हमारे पुराने नाम सिन्धुओं या हिन्दुओं का ही प्रयोग करते रहे। उन्होंने इस शब्द से केवल सिन्ध नदी के तटस्थ प्रदेशों को ही सूचित नहीं किया वरन् उस समस्त राष्ट्र को जिसमें कि प्राचीन सिन्धु विस्तार और संयोग से मिल चुके थे, सूचित किया। अवस्ता के पारसी हमको हिन्दू करके ही जानते हैं, मिश्र के निवासियों ने घोष अक्षर को लुप्त कर के इन्डौस *(Indos)* रहने दिया और उनके द्वारा प्रायः समस्त योरुप और बाद में अमरीका में हिन्दू या *(Indians)* प्रचलित

हुआ। यहां तक कि ह्यूनसांग जी हमारे साथ इतने काल तक रहा हमें शिंतु या हिन्तु कहने पर ही जोर देता है। कुछ उदाहरणों को छोड़ कर जैसे कि पारथिअन अफगानिस्तान को श्वेत भारत कहते थे, विदेशियों ने सचमुच में हमारे प्रारम्भिक नाम को बहुत ही कम भुलाया था या उसके अतिरिक्त नए शब्द भारत को बहुत ही कम महत्ता दी थी। तब से अब तक सारा जगत् हमको "हिन्दू" ही जानता है और हमारे देश को हिन्दुस्तान मानों कि हमारे वैदिक पूर्वजों की यह आशा सर्वप्रथम पूर्ण होती है।

परन्तु नाम की प्रकृति किसी मनुष्य के स्वयं पसन्द किए हुए नाम से उतनी ज्ञात नहीं होती जितनी कि उस नाम से जिससे अन्य लोग उसे पुकारना चाहते हैं, वास्तव में नाम का अस्तित्त्व इसी हित के लिए होता है। अपने आपको आत्मज्ञान निश्चित् रूप से बिना किसी नाम अथवा रूप के होता है। किन्तु जब वह किसी अन्य के संसर्ग में आता है या उससे विरोध होता है तब उसको नाम की आवश्यकता पड़ती है, यदि वह दूसरों से सम्भाषण करना चाहता है या दूसरे उसे सम्भाषण करने के लिए लाचार करते हैं। यह वह खेल है जिसे खेलने के लिए दो व्यक्तियों की आवश्यकता पड़ती है। यदि संसार इसी पर जोर देता है कि एक अध्यापक या चतुर पुरुष अष्टावक्र या मुल्लादो-प्याजा के रूप में ही मिले तो उसकी रुचि न होते हुए भी सम्भवतः वह इन्हीं नामों से स्मरण किया जावेगा। यदि संसार द्वारा छांटा हुआ हमारा नाम साधारणतया हमारी रुचि के

विरुद्ध नहीं है तो यह अधिक सम्भव है कि वह अन्य सब नामों को लुप्त करदे उदाहरण के लिए हम 'पार्गे' 'मुजुमदार,' 'पशेर्वे' आदि नामों को प्रस्तुत कर सकते हैं, किन्तु यदि संसार ऐसे शब्द को अपनाता है जिससे वह हमारी कीर्ति अथवा प्रारम्भिक प्रेम को समझता है तो यह निश्चित है कि वह शब्द हमारे अन्य नामों को प्रभावित ही नहीं करेगा वरन स्वयं आधिपत्य जमा लेगा। इस तत्त्व ने उन परिस्थितियों के साथ जिनमें कभी तो वाह्य जगत के साथ हमारा घनिष्ट सम्बन्ध स्थापति हुआ और कभी घोर विरोध हुआ शीघ्र ही 'हिन्दू' नाम को फिर एक बार उभरने का अवसर दिया और इतनी शक्ति से कि जिससे वह सुविख्यात नाम भरतखण्ड को भी लुप्त कर सका।

— ३ —

यद्यपि भारतीय किसी प्रकार भी बौद्धधर्म के उत्थान से पूर्व बाह्य जगत से अलग नहीं थे और यद्यपि उनके सांसारिक कार्य इतने विकसित हो चुके थे जिससे कि हमारे देशभक्त, कवि, न्यायकारी "एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः। स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्व-मानवाः" (मनु)—कहने में उचित ही थे, तथापि जहां तक इस तर्क का सम्बन्ध है, बौद्धधर्म के उत्थान से पश्चात् के भारतवर्ष का अन्तराष्ट्रीय जीवन विशेषकर विचारणीय है। क्यों कि इस काल के समीप ही जब राजनैतिक उद्योग जो चरम सीमा को पहुंच चुका था और जिसके विकास की सब सम्भावनाएं समाप्त हो चुकी थीं, स्वभावतः अपनी सीमा का अपूर्व विस्तार करने लगा और बाहरी जगत के व्यवहार हमारे द्वार पहिले से भी अधिक निर्लज्जता एवं आवश्यकता से खटखटाने लगे। इन राजनैतिक विकासों के अतिरिक्त उस महान और दैविक उद्देश्य के जिसने सदाचार के नियम का प्रचार किया था भारतवर्ष को समस्त जगत की आत्मा बनाया और हृदय बनाया। मिश्र से मेक्सिको तक के लाखों मानव-आत्माओं का यह सिन्धुओं का देश उनके देवी देवताओं का देश होगया था। सुदूर देशों से सहस्त्रों यात्री इस देश में आते थे और सहस्त्रों पण्डित, उपदेशक, योगी और सन्त इस

देश से सारे जगत में जाते थे। किन्तु सारे जगत के हमको हमारे प्राचीन नाम सिन्धु या हिन्दू से पुकारते रहने की दृढ़ता के कारण इन दोनों विगत व आगत प्रवृत्तियों ने हमारे राष्ट्रीय नामों में से इसे प्रमुख बनाने में बहुत सहायता की। हमें हिन्दू या इन्डस *(Indus)* नाम से पुकारने वाले अनेक राज्यों से राजनैतिक एवं नीतिपूर्ण संसर्ग की आवश्यकता ने हमारी जाति पर उसके उत्तर का भार लादते हुए इस नाम के प्रयोग को पहिले तो भरतखण्ड नाम के साथ साथ और फिर उसके अलावा भी समुन्नत बनाया।

किन्तु यदि बौद्धधर्म की उन्नति ने इस नाम को समस्त संसार में प्रमुख बनने के योग्य बनाया और हमारे भीतर हिन्दूपन की भावना अधिकाधिक जागृत की तो यह कहना आश्चर्यजनक है कि बौध्दधर्म की अवनति ने इस प्रवृत्ति को पहिले से भी अधिक सहायता दी। विद्वानों ने बौध्दधर्म की अवनति के उस प्रमुख कारण पर उतना ध्यान नहीं दिया जितना देना चाहिए था, किन्तु यहां वह कारण गौणरूप में आता है इस लिए हम उस पर सविस्तार विचार नहीं करेंगे। यहां पर हम यही कह सकते हैं कि थोड़े से सामान्य कारणों का निरूपण करें और उनको सविस्तार व्याख्या के लिए किसी और उचित अवसर के लिए छोड़ दें—यदि इसको अधिक उपयुक्त मनुष्य पूर्ण नहीं कर सकें। क्या यह सत्य है कि केवल दार्शनिक मत-भेद ने ही हमारे राष्ट्र को बौध्दधर्म के प्रतिकूल चलाया। पूर्णतया

नहीं:— क्योंकि, ऐसे मत भेद सदा से रहे हैं, और यहां तक कि वे एक दूसरे के साथ साथ समुन्नत हुए हैं। क्या यह बौध्दधर्म की संस्था की सामन्य निःसारता एवं धर्म श्रेष्ठता हो सकती है? पूर्णतया नहीं:— क्योंकि, यदि कुछ विहारों ने दुराचारी, आलसी और मिश्रित स्त्री पुरुषों को जो दूसरों के सहारे अपना जीवन व्यतीत करते थे और पराई सम्पत्ति को दूर्षित कर्मों में व्यय करते थे, आश्रय दिया, तो भी दूसरी ओर, अरहट और भिखुष के महान आध्यात्मिक पुरुषों का अनुकरण पूर्णतया समाप्त नहीं होगया था। और न ऐसे दृश्य केवल बौद्ध-विहारों में ही प्रचलित थे। ये तथा अन्य बहुत सी त्रुटियां हमारे ध्यान को इतनी अधिक आकर्षित न करतीं और न बौद्ध-शक्ति के लिए इतनी विनाशक सिद्ध होतीं यदि बौद्ध धर्म के विकास के राजनैतिक परिणाम हमारी राष्ट्रीय-शक्ति एवं हमारी जाति की राष्ट्रीय सत्ता के लिए इतने घातक न होते। इस महान दुखान्त नाटक की कोई भी प्रस्तावना अत्यन्त आपत्ति की सूचना देने में इतनी प्रभावोत्पदाक नहीं हो सकती जितनी शाक्यसिंह के जीवन की वह घटना थी जबकि शाक्य वर्गों के छोटे से राज्य के दुर्भाग्य का समाचार उनके पहले राजकुमार को उसी समय मिला था जबकि वह बौद्ध संस्था का शिलान्यास ही कर रहा था। उसने अपने कुटुम्ब के सब उदीयमान पुरुषों को पहिले ही भिखु-संघ में सम्मिलित कर लिया था जिससे शाक्यों का राज्य शूरवीर और श्रेष्ठ पुरुषों से वंचित रह गया, यही कारण था कि वह शाक्यसिंह के जीवन काल में ही जल्दी से शक्ति शाली और लड़ाकू पुरुषों का ग्रास

बन गया। इस समाचार के मिलते ही कहा जाता है वह उदासीन विमुक्त होचुका था। शताब्दियां बीच गईं : शाक्यों का राजकुमार, राजकुमारों का राजकुमार लोकजीत और संसार का महान् विजेता होगया था। उसके छोटे से शाक्य-राज्य की सीमा ने विस्तृत होकर समस्त भारत की सीमा को अपना लिया था। और कवित्त्व-संक्षेप और कवित्त्व-न्याय के विचार से उस दुर्भाग्य ने जिसने कपिलवस्तु के समूहों के राज्य को हड़प लिया था सम्पूर्ण भारत को भी पराजित कर दिया जिससे वह शक्तिशाली एवं लड़ाकू लिचियों और हूणों का सहज ही शिकार बन गया। वास्तव में पदच्युत इनसे पहले की भांति ही अप्रभावित रहता, यदि यह समाचार भी पहले समाचार की भांति उसे पहुँचाया जाता।

परन्तु शेष हिन्दू उस समय उनके इस निष्ठुरता और राजनैतिक-पतन के प्याले को नहीं पी सके जिनकी बर्वर हिंसा का अहिंसा के कोमल सिद्धान्तों वा अध्यात्मिक भ्रातृत्व से प्रतिकार नहीं किया जा सकता था और जिनके शास्त्रों को ताड़-पत्रों एवं मधुर-मन्त्रों से काट गिराना असम्भव था हमारा तात्पर्य उस महान् भ्रातृत्त्व और उसके दैविक उद्देश्य की सेवाओं का अपमान करना या उसको दोषी ठहराना नहीं है। हमें केवल वही बतलाना है जिसको इतिहास का कोई भी विद्यार्थी नहीं भुला सकता। हम यह भी जानते हैं कि इस कथन के विपक्ष में आसानी से कहा जा सकता है कि सबसे महान् और शक्तिशाली

भारतीय राजा और सम्राट बौद्ध काल में ही हुए हैं। हां! किन्तु उन को कौन जानते हैं?—केवल योरूपीयन ही और हम में से वे जिन्होंने अज्ञानता में न केवल उनके आदर्श ही वरन् उनके दुराग्रह भी ग्रहण कर लिए हैं। एक समय था जबकि भारत में प्रत्येक पढ़ाये जाने वाले इतिहास का आरम्भ मुसलमानों के हमलों से होता था क्योंकि उस समय साधारण अंग्रेज़ी लेखकों को इसके अतिरिक्त हमारे पूर्व जीवन का और कुछ पता ही न था। बाद में योरुप का व्यापक-ज्ञान बौद्धधर्म के उत्थान के समय तक पहुँचा और हमभी उसको अपने इतिहास में सर्व प्रथम और यहां तक कि सब से अधिक यशस्वी काल समझते हैं। वास्तव में यह इन दोनों में से कुछ भी नहीं है। हम बुद्ध उनके धर्म और संघ के समान किसी और धर्म को प्रेम, प्रशंसा और आदर की दृष्टि से नहीं देखते। वे सब हमारे ही हैं। उनकी कीर्ति हमारी ही कीर्ति और उनकी अवनति हमारी ही अवनति है। देवप्रिय अशोक महान् थे किन्तु बौद्ध भिक्षुओं के विजयी कार्य उनसे भी महान् थे। उनसे अधिक भी नहीं, तो उतने ही सम्पन्न कार्य और अधिक राजनीति पूर्ण पवित्र वस्तुएँ पहिले हो चुकी थीं, वास्तव में उन्होंने ही उनको इतनी योग्यता प्रदान की थी। अतएव हमारी यह धारणा नहीं है कि हमारी जाति की राजनैतिक शक्ति और चरित्र-उच्चता केवल मौर्यों के साथ ही उत्पन्न होकर समाप्त होगई थी। बौद्ध धर्म ने विजय अवश्य की थीं किन्तु वे उस संसार से सम्बन्ध रखती हैं जो हमारे इस पार्थिव संसार से बहुत दूर हैं जहां मिट्टी के पैर अधिक

देर नहीं टिक सकते, और लोहा शीघ्र ही जाता है, और जहां स्वर्ग में सतत बहने वाले सुशोभित श्रोतों से पुकारी जाने वाली प्रबल और-वास्तविक तृष्णा को शान्त नहीं किया जा सकता। इन्हीं विचारों ने हमारे देशभक्तों और विचारकों को जब हूण और शक हमारे देश में ज्वालामुखी की भान्ति उबल पड़े थे, जिन्होंने सर्व-सम्पन्नता को भस्म कर डाला था, देश को जागृति दी होगी। भारतीयों ने देखा कि उनकी जाति के माननीय आदर्श उनकी गद्दियां, उनके कुटुम्ब और उनकी उपासना उनके इष्ट देव पैरों तले कुचल दिए गए और उनके अनुराग का पवित्र देश उस बर्बर जाति द्वारा नष्ट-विनष्ट होगया जो उनसे भाषा में, धर्म में, आदर्श में, उदारता में, यहां तक कि ईश्वर तथा मनुष्य के सभी सुकोमल वृत्तियों में कहीं निम्न थे;-- किन्तु उनसे केवल शक्ति में उच्च थे।—वह शक्ति जिसमें धर्म का नाम न था, दो शब्दों में—अग्नि और तलवार! इसका परिणाम स्पष्ट था। और यह बात भी स्पष्ट थी कि बौद्ध-तर्क में कोई भी सिद्धान्त ऐसा न था जो इस विनाशक द्वैतवाद इस अग्नि और तलवार के विलक्षण बाइबिल का सामना करता। अतएव हमारी जाति के विचार और कार्य के नेताओं को दैवत्त्व को दूषित कर देने वाली अग्नि का नाश करने के लिए अपनी यज्ञ-अग्नि को फिर से प्रज्वलित करना था और महाकाली *(the Terrible)* की वेदी पर तेज करने के लिए वैदिक-खानों को फिर से खोदना था—जिससे महाकाल *(the Spirit of times)* को शान्त किया जाता। उनकी कामनाएँ झूठ सिद्ध नहीं हुईं।

पुनः जागृत हिन्दू-जाति की सफलता अनिवार्य और विवाद रहित थी। विक्रमादित्य जिन्होंने भारत भूमि से विदेशियों को खदेड़ दिया था और ललितादित्य जिन्होंने उनको तारतार से मङ्गोलिया तक उनके घरों से पकड़ कर शुद्ध किया था, एक दूसरे के सहयोगी थे। जिस कार्य को सिद्धान्त सम्पन्न न कर सके शक्ति ने कर दिखाया। मनुष्य फिर एक बार महानता की उस ऊँचाई तक पहुँच गए जिसने जीवन के सभी अंगों पर अपना समुचित प्रकाश डाला। कविता और दर्शन, चित्रकला और वस्तुकला, कृषि और व्यापार, विचार और उद्योग, स्वातन्त्र्य और शक्ति और विजय से जागृत होने वाली चेतनता से शीघ्र ही उन्नति पाने लगे। सदा की भांति अब भी प्रतिक्रिया पूर्ण थीं यद्यपि उसमें त्रुटि थी। राष्ट्रीय वाणी तीव्रता से गुंजारने लगी— "वैदिक धर्म के साथ उन्नति करो!" "वेदों का अनुसरण करो!" क्योंकि, इसकी राजनैतिक आवश्यकता थी।

बौद्धधर्म ने विश्व-धर्म के प्रचार का प्रथम पर सबसे बड़ा महान् उद्योग किया था। "ऐ भिक्षुकों, तुम संसार की दशों दिशाओं में जाओ और सदाचार (*Righteousness*) के नियम की शिक्षा दो!" वास्तव में वह सदाचार का ही नियम था— उसमें स्वार्थपरता की बू नहीं थी, उसे अपनी जागृति के लिए भूमि या सम्पत्ति का मोह नहीं था: यद्यपि उसके कार्य महान् थे, किन्तु वह सम्पूर्ण मनुष्यों के मनों से न पाशविकवृत्ति न राजनैतिक अकांक्षा और न व्यक्तिगत उन्नति के बीज को इस सीमा तक

निर्मूल कर सकी जिससे भारतवर्ष की तलवार के बदले गुलाब प्राप्त करने में रक्षा होती। तब भी उदाहरण स्थापित करने के लिए—"भारतवर्ष ने शान्ति और सदाचार की विजय में युद्ध की विजय से अधिक आनन्द प्राप्त करने की रुचि दिखलाई।" उसने शिष्टता से प्रयत्न किया। आह! इतनी शिष्टता से कि ऐश्वर्य और धन के मोह के सामने उसका ही उपहास होगया होता यदि वह इस प्रकार की राजकीय आज्ञा न कर देती कि घोड़ों और हाथियों को पिलाने से पूर्व पानी शुद्ध होजाना चाहिए, जिससे जल में पड़े हुए छोटे छोटे कीटाणु आकस्मिक मृत्यु से बच सकें। और यदि उसने सागरों में अनाज फेंकने के लिए केन्द्र स्थापित न किए होते जिससे संसार की मछलियां अपने २ महासागरों में खिलाई जा सकें, तो क्या उन मछलियों ने एक दूसरे को खाना छोड़ दिया! उसने मारने वाले को मरवा देने की क्रिया से मार देने का शिष्ट प्रयत्न किया अन्त में कम से कम इसका अनुभव तो किया कि ताड़-पत्र लोहे के शस्त्रों का सामना करने के लिए कहीं कमज़ोर थे जबतक कि सारासंसार पंजों से दान्तों तक रक्त रंजित था और राष्ट्रीय एवं जातिय विभिन्नता इतनी प्रबल थी कि जिससे मनुष्य अमानुषिक (बर्बर) होजाएं, अथवा जबतक भारत को अपने आत्माधिकार के अनुसार आध्यात्मिक एवं राजनैतिक जीवन व्यतीत करना था उसे राष्ट्रीय एवं जातीय संयोग से उत्पन्न शक्ति को नहीं खोना चाहिए था। अतएव विचारशील और उद्योगी नेता विश्व-भ्रातृत्व की विशेषताओं को दुहराते दुहराते थक कर कहने लगे थे कि—

"ये त्वया देव निहिता असुराश्चैव विष्णुना । ते जाता म्लेच्छरूपेणाम पुनरद्य महीतले ॥ व्यापादयन्ति तं विप्रान् ध्नंति यज्ञादिकाः क्रियाः । हरन्ति मुनिकन्याश्च पापाः किं किं न कुर्वते ॥ म्लेच्छाक्रंते च भूलोक निर्वषट्कार मगले । यज्ञयागादि विच्छेदार्दवलोकोऽवसदिति ॥ (गुणाढ्य) जब बर्बर हूणों और शकों के समूह जिन्होंने उनके उस सुन्दर देश को बरबाद किया था जो भिक्षुओं का चोला पहन चुका था और जिसने तलवार की अपेक्षा गुलाब की क्यारी को अपनाया था और अहिंसा की कड़ी प्रतिज्ञा की थी सिन्धु *(Indus)* नदी से भी भगा दिए गए थे एवं एक शक्ति शाली राष्ट्रीय राज्य की दृढ़ स्थापना हो गई थी तो यह स्वाभाविक ही था कि हमारी जाति के नेताओं को इसका अनुभव होता कि यदि इस नवीन राष्ट्रीय-राज्य को किसी अत्यन्त राष्ट्रीय संस्था की सहायता मिलती तो अवश्य ही एक महान शक्ति का उद्‌धाटन किया जा सकता था।

इसके अतिरिक्त हममें जो गुणभी हमारे शत्रुओं के समान रूप वर्तमान हैं उनका सामना करने की हमारी शक्ति को कम करते हैं। जिस शत्रु में हमारी कोई भी वस्तु समान रूप से वर्तमान नहीं है हम उसका सामना भयंकरता से कर सकते हैं ; जैसे कि हम उसी मित्र को सबसे अधिक प्यार करते हैं जिसमें वही सब गुण वर्तमान हैं जिनकी हम अपने लिए अधिक प्रशंसा करते हैं। विशेष कर भारत में भूल भी कड़ी भावना की उत्पन्न और प्रबल अवरोध की शक्ति को जागृत करने की आवश्यकता जिसने विश्व

धर्म और अहिंसा के मतवालों की अध्यक्षता में पाप, दुराचार और आक्रमण को रोकने की शक्ति भी खो डाली थी-एक व्यापक चर्च और व्यापक प्रार्थना के स्वरूप को नष्ट करके अच्छी तरह पूर्ण की जा सकती थी जो अपने उन्हीं सह-धर्मियों के हाथ पकड़ना चाहते थे जिन्होंने एक राष्ट्र बना कर उसका गला घोंट डाला था। ऐसे विश्व-धर्म का क्या लाभ था जिसने अन्य राष्ट्रों की क्रूरता और बर्बरता के अहंकार को शान्त करने के बजाए भारत को अरक्षित और असंदिग्ध छोड़ जाने की इच्छा को जागृत किया। नहीं; भविष्य के रक्षक केवल शक्ति और साहस थे जोकि राष्ट्रीय आत्म-जागृति मात्र में उत्पन्न हो सकते थे। उसने अपने जीवन का रक्त मिथ्यावाद के लिए उडेल डाला जिसका प्रभाव बिलकुल उलटा हुआ।

बौद्ध धर्म की सार्वलौकिक प्रवृत्तियों के विरुद्ध उसकी प्रतिक्रिया—जैसे जैसे बौद्ध धर्म ने भारत में फिर से स्थापित होने के लिए भयानक रूप धारण किया — अधिकाधिक प्रबल और दृढ़ होती गई। राष्ट्रीय प्रवृत्तियों ने अपनी राष्ट्रीय-स्वतन्त्रता को बदलने और विदेशी विजेता को अपना प्रमुख स्वामी मानने से इनकार कर दिया। परन्तु, यदि वह विदेशी आक्रमणकारी बौद्ध धर्म की ओर आसक्ति से झुका होता तो, भारतीय बौद्ध उसके प्रति अवश्य सहानुभूति दिखलाते जैसे कैथोलिक स्पेन को इंगलैण्ड के कुछ प्रमुख भागों ने उसके इङ्गलैण्ड में कैथोलिक वंश को स्थापित करने के प्रयत्नों के प्रति सहानुभूति दिखलाई

थी। केवल यही नहीं बल्कि हमारे प्राचीन प्रमाणों में अनेक ऐसे दूषित संकेत मिलते हैं जिनसे पता चलता है कि किसी समय विदेशी बौद्ध शक्तियों ने भी राष्ट्रीय और धार्मिक उद्देश्य से भारत पर चढ़ाई की थी। यहां हम उसकाल के इतिहास का पूर्णतया उल्लेख नहीं कर सकते किन्तु पुराण में आए हुए एक अर्द्ध सांकेतिक और अर्द्ध वास्तविक वर्णन का उल्लेख अवश्य कर सकते हैं जिससे पता चलता है कि हूणों के राजा न्यनपति ने बौद्ध मित्रों की सहायता से आर्य देशजाः पर आक्रमण किए थे। पौराणिक रूप से उपलब्ध प्रमाणों से ज्ञात होता है कि किस प्रकार 'हहा' नदी के तटपर घमासान युद्ध हुआ था और किस प्रकार बौद्ध सेनाओं ने चीन को युद्ध क्षेत्र बनाया था। "चीन देश मुपागम्य युद्ध भूमिकारयत)," और किस प्रकार उन्होंने अनेक बौद्ध राष्ट्रों की सेनाओं से शक्ति प्राप्त की थी: "श्याम देशोद्भवा लक्षास्तथा लक्षाश्चनापका दशलक्षाश्चीनदेश्या युद्धाय समुपस्थितः॥" और किस प्रकार घमासान लड़ाई के पश्चात् बौद्ध उसे खो बैठे थे अपनी पराजय के कारण कितनी हानि उठानी पड़ी थी। उनको भारत के विरुद्ध सम्पूर्ण राष्ट्रीय उद्देश्यों को त्यागना पड़ा और यह प्रतिज्ञा करनी पड़ी कि वे फिर भारत में पदार्पण न करेंगे। बौद्धों का जहांतक व्यक्तिगत सम्बन्ध है भारत से डरने का कोई कारण नहीं था क्योंकि भारत सहनशीलता का देश था किन्तु उन्हें भारत के राष्ट्रीय जीवन और अपनी स्वतंत्रता को आघात पहुचाने के सम्पूर्ण स्वप्नों को छोड़ देना चाहिए "सर्वैश्च बौद्धवृन्दैश्च तत्रैव शपथं कृतम्। आर्य देशं न यास्यामः कदाचि-

द्राष्ट्रहेतवे ॥ " (भविष्यपुराण प्रतिसर्ग पर्व)।

अतएव हमें ज्ञात होता है कि हमारे राष्ट्र की विशेषताओं की विलक्षण संस्थाएं फिर से जागृत होगईं:— वर्णाश्रमव्यवस्था, जिसका बौद्ध-प्रभुता में भी निर्मूल नाश नहीं किया जा सका इस सीमा तक उन्नत हो चुकी थी कि राजा और सम्राट "वर्णव्यवस्थापन पर:" (सोनापत ताम्रलेख), व "वर्णाश्रम व्यवस्थापन प्रवृत्ताचक्र:" (मधवतताम्रपट) कहलाए जाने में अन्तर ज्ञात होता था। इस संस्था के पक्ष में प्रतिक्रिया इतनी प्रबल होगई थी कि हमारी राष्ट्रीयता भी स्वयं उसका रूप धारण करती जारही थी। इस परिभाषा को देखो जो हमारे और विदेशियों के बीच में अन्तर की रेखा खींचती है "चातुर्वर्ण्य व्यवस्थानं यस्मिन्देशे नविद्यते। तं म्लेच्छदेशं जानियादार्यावर्तस्ततः परम् ॥" इस परिभाषा के अनुसार अपने मनुष्यों को उस देश में जाने से रोकना स्वभाविक ही था जो हमारी इन विलक्षण संस्थाओं के धर्म विरोधी थे और कोई कोई तो क्रूर शत्रुवत ही थे तथा जहां हमारे मनुष्यों की अपने उत्साह और धर्म को बचाए रखने के लिए रक्षा की कोई आशा नहीं थी। प्रतिक्रिया असंयत होने पर भी राजनैतिक दृष्टिकोण से पूर्णतया सुबोध थी; क्योंकि हमारे देश में भी क्या अब प्राय: ऐसे विचारक नहीं मिलते जो उन नियमों का प्रतिपादन करते हैं जो देश के मनुष्यों को उन राष्ट्रों में जाने से रोकते हैं जहां उनको राष्ट्रीय असुविधाओं और अपमानों की आधीनता स्वीकार करनी पड़ती है ?

अतएव यह राजनैतिक और राष्ट्रीय आवश्यता बौद्ध धर्म की अवनति की एक साथ ही कारण और परिणाम थी। बौद्ध धर्म का भौगोलिक केन्द्र कहीं भी नहीं था। अतएव भारतवर्ष को कम से कम अपने राष्ट्रीय केन्द्र को पुनर्जीवित करने की बड़ी आवश्यकता थी जिसे उसने बौद्ध धर्म की अनुरुपता स्वीकार करने में खो-दिया था। जब राष्ट्र में कीटाणुओं की भांति अत्यधिक आत्म जागृति का उदयन हुआ और जब वह प्रत्यक्ष रूप में अनात्म का विरोध करने लगा, तो उसने स्वभावतः ही अपने द्वारा अपनाए हुए देश को स्पष्ट करने वाली विभाग की रेखा को खींचना आरम्भ किया जिससे वे अपनी पूर्व स्थिति को ठीक ठीक समझ सकें और संसार को बतला सकें कि वे वास्तव में न केवल एक वंशीय और राष्ट्रीय ही थे वरन् भौगोलिक और राजनैतिक दृष्टिकोण से भी संगठित व्यक्ति थे। हमारे देश में दक्षिण की ओर प्राकृतिक और युक्ति पूर्ण सीमा का पहिले ही चरम-विकास हो चुका था जिसको न्यायसंगत और पवित्र भी ठहरा दिया गया था। हमारे असीम और गहरे सागरों का स्वरूप जिनमें हमारा दक्षिण का प्रायद्वीप स्थित है प्रायः अपनी उदारता और सन्तुष्टी में काव्यमय है। "समुद्ररशना" ने हमारे कवियों और देश भक्तों के वंशजों के नेत्रों को परम आनन्दित किया था। किन्तु हमारे राष्ट्र की उत्तर-पश्चिम सीमाओं पर जातियों का सम्मिश्रण सुरक्षित और स्वस्थ रहने पर ध्यान दिए बिना ही अशिष्टाचार से बढ़ता चला जा रहा था। अतएव यह आश्चर्यजनक बात होती यदि आत्मदृढ़ता का प्रबल उत्साह

जिसने उज्जैन के महाकाल की अध्यक्षता में इतना अन्धकार पूर्ण कुष्ठीगृह स्थापित किया था हमारे देश भक्तों का ध्यान हमारी सीमाप्रदेश की विभाग रेखा की उत्कट इच्छा की ओर आकर्षित न करता जो बिल्कुल स्पष्ट और प्रभावशाली थी। और वह रेखा इस तीव्र प्रवाह और शक्तिशाली नदियों की नदी "सिन्धु" के अतिरिक्त और क्या हो सकती थी? जिस दिन हमारी जाति के पूर्वजों ने यह नदी पार की थी उसी दिन से वे उन लोगों से नाता तोड़ चुके थे जिनको निश्चय ही वे पीछे छोड़ चुके थे और एक नवीन राष्ट्र की स्थापना की थी नवीन आशा और उद्देश्य के पूर्ण करने वाले नक्षत्र के नीचे नवीन राष्ट्र में उत्पन्न हुए थे जो संयोग और विकास से एक जाति और एक नवीन नीति में समुन्नत हुए थे, जो ठीक ठीक और बोधजनित भाव में सिन्धु या हिन्दू ही कहला सकती थी।

सिन्धु नदी को सीमाप्रदेश की रेखा मानने का प्रयत्न कोई नवीन नहीं था। वास्तव में यह उद्धारकों के "वेदों का अनुकरण करो (*Back to the Vedas*)"—युद्ध-घोषणा का प्राकृतिक परिणाम था। वैदिक संस्कृत से समुन्नत और उसी पर आश्रित वैदिक-साम्राज्य किसी वैदिक नाम से ही पुकारा जाना चाहिए था; और जहां तक यह उस समय सम्भव था वैदिक प्रवृत्ति के अनुरूप ही होना चाहिए था। और घटनाओं की यह क्रिया जिसका अनुमान स्वयं इतिहास की प्रगति कराती वास्तव में अपना कार्य करती ज्ञात होती है। क्योंकि देशभक्ति से पूर्ण

एक पुराण हमें विश्वास दिलाता है कि शालिवाहन ने जो विक्रमादित्य महान का पोता था विदेशियों के द्वितीत आक्रमण को विफल करने और उनके सिन्धु के पार भगा देने के पश्चात एक राजकीय आज्ञा की विज्ञाप्ति की थी कि अब से सिन्धु नदी भारत और अन्य अभारतीय राष्ट्रों के बीच विभाजक रेखा समझी जावेगी:—"एतस्मिन्नन्तरे तत्र शालिवाहनभूपतिः। विक्रमादित्य पौत्रश्च पितृराज्यं प्रपेदिरे ॥ जित्वा शकान् दुराधर्षान चीनतैत्तिरिदेशजान्। वाल्हिकान् कामरूपांश्च रोमजान् खुरजान् शठान् ॥ तेषां कोशान् गृहीत्वा च दण्ड योग्यानकारयत्। स्थापिता तेन मर्यादा म्लेच्छार्याणां पृथक् पृथक् ॥ सिन्धुस्थानमिति ज्ञेयं राष्ट्रमार्यस्य चोत्तमम्। म्लेच्छस्थानं परं सिन्धोः कृतं तेन महात्मना ॥" (भविष्यपुरारण, प्रतिसर्ग पर्व अ० २)

हमारे देश के अत्यन्त प्राचीन नामों में से जिनके हमारे पास प्रमाण हैं सप्तसिन्धु या सिन्धु है। यहां तक की भारतवर्ष भी जैसा कि होना चाहिए बाद का नाम है, मनुष्य की कीर्ति चाहे कितनी ही महान क्यों न हो समय बीतने पर अपने यश को खो देती है। राष्ट्रीय उन्नतितों और व्यक्तिगत प्रिय-संसर्गों के सहित किसी महान उपयोगी और सतत् प्राकृतिक घटना से सम्बन्ध रखने वाले नाम के समान वह नाम जो व्यक्तिगत यशों और सम्पादित कार्यों के दर्शाने में स्वयं अपनी महत्ता दिखलाता है गौरव और कृतज्ञता की सदा बढ़ने वाली चेतनता का स्थायी और प्रभावोत्पादक उद्गम नहीं हो सकता। यद्यपि सम्राट भरत

मर गए और उनके समान अनेकों महान् राजा भी मर गए किन्तु सिन्धु हमारी कृतज्ञता की भावना को सदैव जागृत और पोषित करती हुई, हमारी गौरव की भावना को सजीव करती हुई, हमारी जाति की प्राचीन स्मृतियों को नवीन बनाती हुई, एक सन्तरी की भान्ति व्यक्तियों के भाग्य की रक्षा करती हुई सतत बह रही है। यह वह जीवन दायक रीढ़ की हड्डी है जो प्राचीनतम काल को सुन्दर भविष्य से मिलाती है। वह नाम जो हमारे राष्ट्र को ऐसी नदीसे मिलाकर उसके समानुरूप करता है, हमारे पक्ष में प्रकृति का उल्लेख करता है और हमारे राष्ट्रीय जीवन को ऐसी नींव पर अधारित करता है जहां तक मानवी अनुमानों का सम्बन्ध है जो नियति के समान टिकने वाली है। इन सब विचारों ने उस समय के उद्योगी और विचारक नेताओं की कल्पनाओं को जागृति दी होगी और उनको हमारे देश और राष्ट्र का पुराना वैदिक नाम सिन्धुस्थान-"राष्ट्रमार्यस्य चोत्तमम्" फिर से प्राप्त करने में बाध्य किया होगा।

सिन्धु स्थान नाम के वैदिक होने के साथ साथ एक और विलक्षण लाभ था जो केवल भाग्यशाली ही कहा जा सकता है और जिसको यहांपर भुलाया भी नहीं जा सकता। संस्कृत "सिंधु" शब्द केवल (Indus) नदी का द्योतक ही नहीं है वरन् सागर को भी बतलाता है—"समुद्ररशना" जो दक्षिण प्रायद्वीप के चारों ओर फैला है— अतएव यह शब्द "सिंधु" हमारे देश के प्रायः सभी सीमाप्रदेशों का एक ही साथ उल्लेख

करता है। यदि यह परम्परागत बात भी न मानें कि ब्रह्मपुत्रा सिन्धु नदी की ही शाखा है जो हिमालय के पूर्वी और पश्चिमी ढालों पर बहते हुए श्रोतों में जाकर गिरती है और इस प्रकार हमारे पूर्वीय और पश्चिमीय सीमा प्रदेशों की स्थापना करती है तो भी यह निर्विवाद सत्य है कि वह अपने घुमाव में हमारी उत्तरीय और पश्चिमीय सीमाओं को घेरती है इसलिए सिन्धुस्थान हमारी मातृभूमि का जो सिन्धु से सिन्धु—सिन्धु नदी से सागर तक फैली है—प्रायः प्रतिबिम्ब है।

किन्तु यह नहीं मान लेना चाहिए कि हमारे देश का सिन्धु नाम केवल भौगोलिक विचार से सर्वोत्तम होने के कारण अधिक ऊंचा। क्योंकि, हमें इसका उचित वर्णन मिलता है कि इस शब्द से सूचित भाव केवल भौगोलिक ही नहीं वरन् राष्ट्रीय भी था, सिन्धुस्थान भूमि का केवल एक टुकड़ा ही नहीं था किन्तु वह एक राष्ट्र था—वह राष्ट्र जो आदर्श में वास्तविकता में भी नहीं तो एक राज्य (राजः राष्ट्रम्) अवश्य था। इससे यह पता चला कि सिन्धु स्थान में समुन्नत संस्कृति और उसके नागरिक वैदिक काल के अनुसार सिन्धु कहलाते थे। सिन्धु स्थान म्लेच्छस्थान (बिदेशियों के देश) से भिन्न "राष्ट्रमार्यस्य चोत्तातम्" था, तो भी यह साफ़ साफ़ बतलादेना चाहिए कि यह परिभाषा किसी सैद्धान्तिक सूक्ष्म विवेचन अथवा किसी धर्मोन्माद पर निर्भर नहीं है। उन्हीं मन्त्रों में आर्य शब्द की स्पष्ट व्याख्या की गई है कि यह उन सब व्यक्तियों का द्योतक था जो सिन्धु के हमारे तट पर समुन्नत जाति और राष्ट्र में पूर्ण

अंग की भाँति सम्मिलित थे चाहे वे वैदिक, अवैदिक, ब्राह्मण तथा चाण्डाल ही क्यों न थे, और जिन्होंने सार्वजनिक संस्कृति, सार्वजनिक रक्त, सार्वजनिक देश और सार्वजनिक नीति को अपनाया था तथा जिस पर कुल-क्रम से प्राप्त करने का अधिकार सिद्ध हुआ था; जबकि म्लेच्छ सिन्धुस्थान का विपक्षी होने के कारण राष्ट्रीय और जातीय विदेशियों का द्योतक था चाहे वे धार्मिक विदेशी रहे हों अथवा नहीं।

यह राजाज्ञा भी साधारणतया अन्य सब राजाज्ञाओं की भांति एक प्रबल और प्रख्यात प्रवाह का राजनियम प्रवर्त्तक परिणाम थी। क्योंकि, अटक को भारत देश का वास्तविक अन्त समझने की परम्परा यदि वह हमारी राष्ट्रीय भावना को प्रभावित न करती और उससे जागृत न होती तो जैसा कि अटक शब्द ही सूचित है इतने विश्व व्यापी रूप में उत्पन्न न होती और इस काल तक इतनी न मानी जाती। यह चाल जिसको लाखों मनुष्य राजा से रंक तक इतने आदर और इतनी धारणा से मानते हैं इस बात को स्पष्टतया प्रमाणित करती है कि हमारे सीमा-प्रदेशों का प्राचीन नाम सिन्धु से समीकरण करने और उससे हमारे राष्ट्र और देश का सिन्धु स्थान नाम ठहराने की राजाज्ञा की विज्ञप्ति हुई थी; और यह कि इस राजाज्ञा तथा लोक मत की सर्वोत्तम धार्मिक पवित्रता ने वैदिक नाम को फिर से प्राप्त करने के प्रयत्न को अन्त में सफल बनाया वास्तव में इन सिन्धु और सिन्धुस्थान शब्दों को वह प्रभावशाली रूप प्राप्त करने के लिए अनेक शताब्दियों और आकस्मिक

घटनाओं की आवश्यकता थी जिससे वे हमारी समस्त जाति के अधिकार सिद्ध होते और हमारे राष्ट्र के विचारों को प्रभावित करने में सफल होते। अन्ततः उन्होंने ऐसा कर दिखाया है और आज हमें ज्ञात होता है कि चाहे बहुत से लोग आर्यावर्त या भारतवर्ष के वास्तविक अर्थ को न समझें किन्तु एक राहगीर हिन्दू और हिन्दुस्थान को सहज ही समझलेगा और उनको अपनावेगा *

---

*भविष्य पुराण के उपरोक्त मन्त्र बिलकुल विश्वास करने योग्य मालूम होते हैं—जहां तक उनके साधारण कथन का का सम्बन्ध है; पहिले, क्योंकि वे उस सामान्य परम्परा का उल्लेख करते हैं जो तिथियों और व्यक्तिगत अनुक्रम से अधिक समय तक स्मरण रक्खी जासकती है। दूसरे, उसके अलावा, हमारे इतिहास की साधारण प्रवृत्ति जैसा कि दर्शाई गई है, ऐसी ही अवस्थाओं का निर्देश करती है। तीसरे, यहां पर यह आवश्यक नहीं है कि हम उस आज्ञा की तिथि या उस राजा को जिसने वह आज्ञा प्रकाशित की थी, ठीक ठीक बतलावें; और चौथे, लेखक उन बातों का जिनको वह बिलकुल नहीं जानता सन्देह-युक्त वर्णन नहीं करना चाहता। क्योंकि विक्रमादित्य के कुल की जो अनुक्रमणिका लेखक प्रस्तुत करता है वह अन्य स्थानों पर भी मिलती है जो आपस में पूर्णतया मिलती हैं। वह लेखक जो कुल को सविस्तार जानता है उसे उसके एक प्रमुख सम्राट के विषय में कम से कम मुख्य बातें तो अवश्य ही पता होंगी।

परन्त इस नाम के इतिहास के आगमी विकास की प्रगति को बतलाने से पहिले हम अपने आप से क्षमा मांग लेना आवश्यक समझते हैं। इस विभाग के लिखने में हमने अपनी धारणाओं को आघात पहुँचाया है। अतएव हम यहीं पर लिख देना चाहते हैं कि कुछ कटु शब्द बौद्धधर्म की उस राजनैतिक आवश्यकता की व्याख्या करने में हमें प्रयोग करने पड़े हैं। जिसने भारत में बौद्धधर्म की अस्वीकृति को जागृत किया था—उनसे यह नहीं समझ लेना चाहिए कि हमारे मनमें उस सम्पूर्ण समाज के प्रति कोई ऊँचा भाव नहीं है। नहीं, नहीं! मैं उस महान और पवित्र संघ का जो संसार में सबसे अधिक पवित्र है उतना ही एक विनम्र प्रशंसक और उपासक हूं जितना कि उसका आदि पुजारी होसकता है हमने उससे दीक्षा नहीं ली

आखिरकार, हमारे इतिहास के साधन विशेषकर हमारी राष्ट्रीय परम्परा ही हैं और सदैव रहेंगी—जो कि हमारे प्राचीन पुराणों, वीर गाथाओं और साहित्य में लिखी हुई हैं। उनकी बारीकियों को असत्य सिद्ध किया जा सकता है, उनकी तिथियों को अस्वीकार किया जासकता है, किन्तु इधर विरोध और उधर अद्भुत रंग ढंग के कारण—जो मानव जाति के सम्पूर्ण प्राचीन प्रमाणों में मिलते हैं, हम उन्हें नितान्त निर्मूल नहीं समझ सकते विशेषकर उन प्रमाणों को जिनका उल्लेख असम्भव या अप्राकृतिक नहीं जंचता या जो उन घटनाओं का कोई विरोध नहीं करते या निर्विवाद सत्य ठहरादी गई हैं। पुराणों की हर एक बात को

है—इसलिए नहीं कि वह हमारे योग्य नहीं था वरन् इसलिए कि हम ऐसे मन्दिर की सीढ़ियों पर चढ़ने के योग्य नहीं थे जो विचारों पर निर्मित होकर चट्टानों पर निर्मित होने वाले महलों से अधिक जीवित रहा था। इस बात का ज्ञान कि मनुष्य के भीतर की अमानुषिक वृत्तियों को त्याग देने का सर्व प्रथम, महान और सफल उद्योग जिसे उन महान् अरहटों और भिखुओं ने विचारा था आरम्भ किया था और एक शताब्दि से दूसरी में प्रचलित किया था, जो आकाश-गंगा की भांति दीप्तिमान थे और जो भारत में उत्पन्न हुए थे, भारत ही में पोषित हुए थे और जिन्होंने भारत को अपनी उपासना का देश स्वीकार किया था—हमारे भीतर ऐसी भावना को जागृत करता है जिसका शब्दों

जब तक कि यह किसी विदेशी प्रमाण से सिद्ध न की जावे—सन्देहात्मक दृष्टि से देखना मूर्खता है। जहां तक साधारण प्रवृत्तियों और घटनाओं का सम्बन्ध है हमें अपने प्रमाणों पर तब तक विश्वास करना उत्तम है जब तक वे किसी अन्य स्पष्ट और प्रबल प्रमाण से असत्य सिद्ध न होजावें केवल उन्हीं लोगों के अस्थायी अनुमानों से जिनको वह सम्भव नहीं जंचते किसी प्रमाण को असत्य मान लेना ठीक नहीं। भविष्य पुराण ही को लो। क्योंकि इसमें कुछ अवास्तविक बातें हैं और यहां तक कि मूर्खताएँ भी—तो क्या प्लूटार्क *(plutarch)* इन से रहित है? क्या हम अलेक्ज़ेन्द्र के व्यक्तित्व को, उसके उत्पन्न होने की कथा को अप्राकृतिक आवरणों से ढक देने के कारण अस्वीकार

में वर्णन नहीं किया जा सकता । और यदि इस संघ के विषय में हमारी ऐसी धारणाएँ हैं तो हम उसके महान संस्थापक— जीवनमुक्त बुद्ध के विषय में क्या कह सकते हैं ? ऐ तथागत । क्या मैं मानव जाति में नम्र से नम्र मनुष्य होने पर भी अपनी नितान्त दीनता औरनिःसारता के अतिरिक्त किसी और भेंट को न लेकर ही तुम तक पहुँचने का साहस कर सकता हूँ ! यद्यपि मैं यह अनुभव करता हूं कि मैं तुम्हारे शब्दों के अभिप्राय को भी नहीं समझ पाता, तो भी मेरा विश्वास है कि ऐसा ही होना

कर सकते हैं ? क्या निम्नलिखित मन्त्र पर सन्देह करना उचित होगा ।

"चंद्रगुप्तस्य सुतः पौरस्वाधिपतेः सुताम । सुलवस्य तथाद्वाहय यावनीं बौद्धतत्परा ?" वास्तव में हम इन पुराणों और वीर गाथाओं के कृतज्ञता के ऋणि हैं क्योंकि इन्होंने हमारी जाति के प्राचीन और सत्य प्रमाणों को उन क्रान्तियो से भी सुरक्षित रक्खा है जिन्होंने संसार में सम्पूर्ण राष्ट्रों और सभ्यताओं की काया पलट करदी थी । क्योंकि, आखिरकार हमारे प्राचीन और देश-भक्ति से पूर्ण इन पुराणों और इतिहासों के उल्लेख उन वर्तमान पाश्चात्य पुराणों से अधिक सत्य और अधिक विश्वास करने योग्य हैं, जिनको इतने विश्वासप्रद अनुसन्धान उपलब्ध हैं जितना कि वह जो हमें विश्यास दिलाता है कि रामायण विजयनगर की स्थापना के गीत गाती है या दूसरा जो बतलाता है कि गौतम— बुद्ध—केवल सूर्य या जीवित प्रभात ही था !!

चाहिए। क्योंकि तुम्हारे शब्द देवताओं के मुखों से निकले हुए देव वाणी हैं और मेरे कान तथा मेरी समझ इस पार्थिव संसार के कोलाहल और उच्चारण को समझने में ही अभ्यस्थ हैं। उस समय शायद तुमने अपने आगमन की घोषणा करने और अपनी पताका फहराने में अत्यन्त शीघ्रता की थी क्योंकि तब संसार नितान्त अनुभव रहित था। और वह दिन तुरन्त का निकला हुआ दिन था। वह तुम्हारा अनुकरण न कर सका और उसकी दृष्टि तुम्हारी पताका के प्रकाश को पूर्णतया देखने से चुँधिया जाती थी। जब तक कि विकासवाद के निम्नलिखित नियम को जोकि सबसे बड़ी आज्ञा का उल्लेख करता है। "चलानामचला भक्ष्या दंष्ट्राणामप्यदंष्ट्रिण अहस्तानां हस्तस्ताश्च शूराणांचैव भीरवः॥ मनु०" उस सदाचार के नियम से भुला दिया जाना कहीं भयानक और दुराग्रह युक्त है, जिसके उद्देश्य आकाश में दमकते तारों की भांति दीप्तमान हैं—तब तक राष्ट्रीयता की पताका सार्वलौकिकता की पताका से परिवर्तित नहीं होसकती और तिस पर भी वह पताका हमारी जाति के देवी देवताओं की उपासना से रिक्त होते हुए भी यदि अपनी सीमा में शाक्यसिंह को न लेती तो अवश्य ही, शक्ति हीन होजाती। किन्तु जैसा कि सत्य है, तू भी हमारा उतना ही है जितने श्रीराम या श्रीकृष्ण या श्री महावीर हैं और तेरी वाणियां हमारी राष्ट्रीय आत्मा की पुकारों की गुंजार ही थीं, तेरी कल्पनाएँ हमारी जाति के स्वप्न थे, और यहां तक कि जब तक सदाचार का नियम हमारे

इस मानवी संसार में प्रकाशित है तब तक तुम को ज्ञात होगा कि वह देश जिसने तुमको जन्म दिया था और वे व्यक्ति जिन्होंने तुमको पाला था इस लक्ष की पूर्ति में सदा सहयोग देते रहेंगे। यदि वास्तव में तुमको सहायता देने की बात इससे अधिक पहिले कभी सिद्ध न हुई हो !!

— ४ —

अबतक हमने सिंधु शब्द की व्युत्पत्ति निर्धारण करने में संस्कृत प्रमाणों का आश्रय लिया है और हमने अपनी खोज को वहीं छोड़ दिया है जहां कि भारतीय राष्ट्र की बढ़ती हुई धारणा उन सब शब्दों में सिन्धु स्थान से सब से अधिक व्यक्त होती है जो उस समय प्रचलित थे। वास्तव में यह कहना उस असभ्य और शूद्र महत्ता का खण्डन करना ही होता जो कि आर्यावर्त की भान्ति इस शब्द से भी सम्बन्धित की जा सकती थी कि सिंधु स्थान शब्द की परिभाषा किसी समाज के विशेष उद्देश्य या मत के प्रभावित प्रस्ताव से मुक्त थी। उदाहरणस्वरूप एक पुष्ट प्रमाण के अनुसार आर्यावर्त "चातुर्वर्ण्यव्यवस्थानं यस्मिन्देशेन विद्यते। तं म्लेच्छदेशं जीनीयादर्यावर्तस्तत परम्"॥ देश था। यह व्याख्या न्याय संगत होने पर भी स्थायी नहीं हो सकती। संस्था समाज के लिए होती है न कि समाज या उसके आदर्श संस्था के लिए। चातुर्वर्ण्य व्यवस्थान् जब अपना उद्देश्य पूरा कर चुका समाप्त हो सकता है—तो क्या उससे हमारा देश म्लेच्छदेश—विदेशियों कादेश हो सकता है? सन्यासी, आर्यसमाजी, सिक्ख तथा और भी बहुत से चातुर्वर्ण्यव्यवस्था को नहीं मानते तौ भी क्या वे विदेशी हो सकते हैं? ईश्वर न करे ऐसा हो! वे रक्त से, जाति से, देश से परमेश्वर से हमारे हैं। "तं वर्ष भारतं नाम भारती यत्र

सन्तति:"—परिभाषा उस से इस जगह अच्छी है क्योंकि उस से अधिक उपयुक्त है। हम सब हिन्दू एक हैं और एक राष्ट्र हैं क्योंकि अधिकतर हमारा रक्त सार्वजनिक है " भारती सन्तति:"।

हमारे इतिहास के इस काल में— बौद्धधर्म की उन्नति तथा अवनति दोनों ही में भारत की प्राकृत भाषाओं का अलौकिक विकास और उन्नति हुई थी, और संस्कृत उच्चकोटि के साहित्य की परम्परागत रूढ़ियों के दृढ़ कोट में इस हद तक सीमित होती चली जारही थी कि नवीन विचारों और नामों को किसी स्वीकृत प्रयोग में लाने से पूर्व उन्हें संस्कृत का रूप देना पड़ता था। स्वभावत: राष्ट्रीय और सामाजिक व्यवहारों की दिन चर्या और परिवर्तनशील परिस्थितियां धीरे धीरे बोलचाल की भाषा प्राकृत में व्यक्त होने लगीं क्योंकि ये नवीनता, प्रभाव और यथार्थता से मनुष्यों के जीवित तथा उत्साह से पूर्ण विचारों के व्यक्त करने में अधिक उपयुक्त हो गई थीं। तदनुसार यद्यपि हिंदु और सिंधु स्थान शब्द कभी कभी संस्कृत गृन्थों में भी मिलते हैं तो भी संस्कृत लेखकों ने साधारणतया व्यवस्थित सौन्दर्य के अनुरूप होने के कारण भारत शब्द को अपनाया था। दूसरी ओर प्राकृत भाषाओं के प्राचीन और सर्वमान्य नाम भारत या आर्यावर्त को न अपना कर उनसे अधिक प्रचलित और जीवित शब्द हिन्दुस्तान (सिंधु स्थान) को पूर्णतया अपनाया। यह दुहराने की आवश्यकता नहीं कि किस प्रकार संस्कृत का स

भारतीय तथा अभारयीत प्राकृत भाषाओं के रूप में परिवर्तित हो जाता है, अतएव हमें भारत के जीवित प्राकृत साहित्य में भी हिन्दुस्तान या हिन्दू शब्दों के समुचित संकेत मिलते हैं। हमारे व्यक्तियों की मौलिक एकता को दृढ़ करने के लिए और हमारे जीवन को उन्नत बनाने के लिए, हमारी आकांक्षाओं को उच्च बनाने और हमारी सत्ता के श्रोतों को शुद्ध करने के लिए यद्यपि संस्कृत भाषा पर हमारी जाति का सदैव पवित्र और समुन्नत अधिकार रहना चाहिये, तिसपर भी, हमारी जाति की बोल चाल की जीवित राष्ट्रीय भाषा होने का गौरव वह प्राकृत पहले ही प्राप्त कर चुकी है जो संस्कृत की सबसे बड़ी पुत्रियों में से होने के कारण उचित रूप से हिन्दी या हिन्दुस्तानी कहलाती है— जो प्राचीन सिन्धुओं या हिन्दुओं के वंशजों की राष्ट्रीय और सांस्कृतिक भाषा है। हिन्दुस्तानी श्रेष्ठतम भाव से हिंदुस्तान या सिंधुस्थान की भाषा है। हिंदी को राष्ट्र भाषा के पद पर नियुक्त करने का प्रयत्न कोई नया नहीं और न कृत्रिम ही है।

भारत में ब्रिटिश राज्य के आने से शताब्दियों पहिले हमें अपनी गाथाओं में लिखा मिलता है कि यही सम्पूर्ण भारतवर्ष की भाव प्रदर्शन की माध्यम थी। एक साधु या व्यापारी रामेश्वरम से चलकर हरिद्वार तक समस्त देश में इस भाषा द्वारा अपने विचारों को समझा सकता था। संस्कृत केवल पण्डितों या राजकुमारों तक ही लेजा सकती थी किन्तु राज सभाओं से बाज़ारों तक में ले जाने के लिए हिंदुस्तानी वास्तविक

और सुरक्षित प्रवेशपत्र का काम देती थी। कोई नानक, कोई चैतन्य या रामदास समस्त देश में उत्तर से दक्षिण तक उसी स्वतंत्रता से यात्रा करते थे जिससे कि वे अपने प्रदेशों में इस भाषा में शिक्षा देते हुए, आदेश देते हुए भ्रमण किया करते थे। हमारी इस प्राकृत और राष्ट्रीय भाषा का विकास और उन्नति सिन्धु स्थान या सिन्धुओं, हिंदुस्तान या हिन्दुओं के प्रचीन नामों के प्रचार और पुनर्जीवन की समानान्तर और समकालीन होने के कारण यह स्वाभाविक ही था कि वह भाषा सम्पूर्ण राष्ट्र का सामान्य अधिकार होंने के कारण हिंदुस्तानी या हिंदी कहलाई जानी चाहिए।

हूणों और शकों के भगा देने के पश्चात उसकी सैनिक शक्ति ने सिंधुस्थान को आने वाली अनेक शताब्दियों तक स्वतन्त्र रहने का अधिकार प्राप्त कराया और एक बार फिर उसे समृद्धशाली और शान्तिमय देश बनने की योगता दी। स्वतंत्रता और स्वाधीनता के कल्याण राजा प्रजा को समानरूप से मिलते थे। हमारे देश भक्त लेखक हर्षोन्माद में हमारे उस आनन्द और महानता का जो हमारे सहस्त्र वर्षों से भी अधिक के विस्तृत इतिहास की विशेषताएं थीं वर्णन करते हुए कहते हैं "ग्रामें ग्रामें स्थितो देवः देशे देशे स्थितो मखः गेहे गेहे स्थितो द्रव्यं धर्मश्चैव जने जने॥" (भविष्य पुराण प्रतिसर्गपर्व)। सिंहल (लंका) से काश्मीर तक राजपूत राज्य करते थे—जो कि राजाओं का एक कुल था। और वे बहुधा विवाहों से सम्बन्धित थे और

इससे भी घनिष्ट वीरता तथा संस्कृति की परम्पराओं से सम्बन्धित थे जो एक सामान्य नियम से चली आता थी। राष्ट्र का सम्पूर्ण जीवन एक समुन्नत और दैविक अनुराग में लीन होरहा था, और राष्ट्रीय भाषा की उन्नति हमारे राष्ट्र जीवन की इस आन्तरिक एकता का वाह्य—प्रकाशन ही थी।

जैसा कि इतिहास में बहुधा हुआ करता है—शान्ति और सम्पूर्णता के विघ्न रहित आनन्द ने सिन्धु स्थान की असत्य रक्षा और स्वप्न के देशों में विचरण करने की भावनाओं में शान्त निद्रा में सुला दिया था। अन्त में उस दिन धृष्टता से उसकी आंखें खुली थीं जिस दिन महमूद गजनवी ने सिंधु स्थान की सीमा प्रदेश की रेखा—सिंधु नदी (Indus) को पार करके उसपर आक्रमण किया था एसी दिन जीवन मरण का युद्ध आरम्भ हुआ था। मनुष्य को उतनी आत्म जागृति किसी भी वस्तु से नहीं होती जितनी अनात्मा से युद्ध करने में होती है। सामान्य शत्रु के बल के समान कोई भी वस्तु व्यक्तियों को राष्ट्र में और राष्ट्रों को राज्य में परिवर्तित नहीं कर सकती। घृणा पृथक भी करती है और मिलाती भी है। उस महान मूर्ति तोड़क ने जिस दिन सिन्धु नदी को पार किया था उस भयंकर दिन से अधिक कभी भी सिंधु स्थान को एक सम्पूर्ण दल बन जाने के लिए अधिक उत्तम अवसर और अधिक प्रबल प्रोत्साहन नहीं था कासिम की अध्यक्षता में भी मुसलमानों ने उस नदी को पार कर लिया था किंतु वह गहरा घाव नहीं कर सका था क्योंकि

हमारे हृदयों को चोट नहीं पहुंची थी और न चोट पहुंचाना उनका ध्येय ही था वास्तविक रूप में लड़ाई आरम्भ हुई थी और अब्दाली के समय में समाप्त हुई थी? वर्षों दसों वर्षों और शताब्दियों तक लड़ाई होती रही। अरब जो कुछ था न रह गया था, ईरान अवनत होचुका था; इजिप्ट (मिश्र), सीरिया, अफगानिस्तान, तुर्किस्तान, ग्रान्डा से गजनी तक—राष्ट्र और सभ्यताएं शान्ति के संस्थापक इस्लाम की तलवार के आगे झुक गए। किन्तु यहां उस तलवार को मारने में नहीं वरन् अपनी चोट करने में—प्रथम बार ही सफलता प्राप्त हुई थी। प्रत्येक वार के बाद वह टूंठी हो जाती थी, प्रत्येक समय वह गहरा आघात करती थी किन्तु जैसे ही वह फिर वार करने के लिए उठाई जाती घाव भर चुकता था। पराजितों की शक्ति विजेताओं की शक्ति से बढ़ जाती थी। विरोध न केवल अधिक ही था वरन उसमें भयंकर अन्तर था। जिससे भारत को लड़ना था वह न कोई जाति थे, न राष्ट्र थे और न संगठित व्यक्ति ही थे। वह प्रायः सम्पूर्ण एशिया थी, जिनका शीघ्र ही समस्त योरूप ने अनुकरण किया था। अरब लोग सिंध में घुस चुके थे किन्तु अकेले होने के कारण वे अधिक कुछ न कर सकते थे। वे अपने देश में ही अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा करने में विफल होगए और हमें उनके विषय में और कुछ पता नहीं चला। लेकिन यहां अकेले भारत को अरबों, पारसियों, पठानों, बलूचियों, तुर्कों तातारियों और मुगलों का सामना करना था जो मानव-सहारा रेगिस्तान में संसार के

एक भयानक तूफान की भान्ति एकत्रित होकर चक्रवातों में उठ रहे थे। धर्म प्रेरणा की एक महान् शक्ति है। और लूटने का दुष्कार्य भी। किन्तु जहां धर्म लूट से प्रोत्साहित होता है और लूट धर्म की सहायक समझी जाती है। वह बढ़ाने वाली शक्ति जो इनके साथ साथ उत्पन्न होती है वह केवल मानव-समाज की दुर्गति और विनाश से ही नष्ट होती है, जो कि वे अपने पथ में करते चले जाते हैं। स्वर्ग और नरक को सामान्य कारण मानने वाली शक्तियां, जो महान् भयंकर थीं जिन्होंने भारत को आश्चर्य में ही पराजित कर दिया था। जिस दिन मुहमद ने सिन्धु नदी पार करके धावा बोला था दिन प्रति दिन, दशाब्दी से दशाब्दी तक, शताब्दी से शताब्दी तक भारत ने अकेले ही अपनी सैनिक शक्ति और सदाचार से इस महान् भयंकर लड़ाई का सामना किया था। सदाचार की विजय उस समय हुई थी जब अकबर गद्दी पर बैठा था, दाराशिकोह का जन्म हुआ था। सदाचार क्षेत्र में अपने खोए हुए भाग्य को फिर से प्राप्त करने के लिए औरङ्गजेब के उन्मत्त प्रयासों से युद्ध क्षेत्र में सैनिक शक्ति का भी ह्रास होगया। अन्त में भाऊ ने मुगलों के साम्राज्य शाही तख्त को लाक्षणिक रूप से टुकड़े टुकड़े कर डाला। पानीपत का दिन आया—हिन्दुओं ने लड़ाई तो हारी किन्तु युद्ध जीत लिया। फिर कभी किसी अफ़ग़ान का दिल्ली में घुसने का साहस नहीं हुआ। उसी समय विजयी-हिन्दू-झंडों को हमारे मरहठों ने अटक तक फहराया था। सिक्ख उसे सिन्धु पार काबुल तक लेगए थे।

इस भयंकर लम्बी लड़ाई में हमारे व्यक्तियों को अपने हिन्दूपन की जागृति हुई और वे एक इतने विस्तृत राष्ट्र में निर्मित होगए जिसका इतिहास में कोई संकेत नहीं मिलता। यह नहीं भूल जाना चाहिए कि हमने अब तक सम्पूर्ण हिन्दू-प्रगति की उन्नति का ही उल्लेख किया है न कि उसके हिन्दुत्त्व के किसी विशेष मत, धर्म अथवा विभाग का और न केवल हिन्दू धर्म का ही। सनातनी, सत्नामी, सिक्ख, आर्य अनार्य मरहटे और मदरासी ब्राह्मण, और पंचामस सबने हिन्दुओं की भांति विपत्तियां झेली थीं और हिन्दुओं की भान्ति ही विजय प्राप्त की थीं। मित्रों और शत्रुओं दोनो ही ने हिन्दू और हिन्दुस्तान को हमारे देश और व्यक्तियों के अन्य सब नामों को दबा देने का समान रूप से प्रयत्न किया था। हिन्दुस्तान के समान आर्यावर्त और दक्षिणापथ, जंबूद्वीप और भारतवर्ष आदि कोई भी नाम उस समय के राजनैतिक और सांस्कृतिक दृष्टि-कोण को इतनी उत्तमता से व्यक्त नहीं कर सका। सिन्धुनदी के इस पार के सम्पूर्ण लोगों ने जिन्होंने सिन्धु से सिन्धु तक के देश की अपनी मातृभूमि की भान्ति उपासना की थी, यह अनुभव किया कि वे वास्तव में केवल एक शब्द हिन्दुस्तान से व्यक्त होते हैं। शत्रुओं ने हम हिन्दुओं से तथा जातियों व व्यक्तियों के सम्पूर्ण कुल से, पंत और मतों से घृणा की थी जो कि अटक से कटक तक समुन्नत हुए थे और जो मिलकर एक होगए थे। हम यहां पर इस टिप्पणी का उल्लेख किए बिना नहीं रह सकते कि १३०० से १८०० ई० तक किसी ने भी अबतक हिन्दू व्यवहारों

क सम्पूर्ण-क्षेत्र की उन विस्तृत घटनाओं पर पूर्ण अधिकार प्राप्त करने की दृष्टि से उनका निरीक्षण नहीं किया। जो अब लंका से काशमीर तक और बङ्गाल से सिन्ध तक समानान्तर और सम्बन्धित रूप से व्यापक हैं, और जो समस्त परिस्थितियों को अनुपात सहित एक समूह में निर्मित करने की कल्पना करतीं हैं। क्योंकि वह हिन्दुस्तान के गौरव और स्वाधीनता की रक्षा करने और हिन्दुत्व की सांस्कृतिक एकता एवं उसके नागरिक जीवन को समुन्नत रखने का एक महान् आदेश था—केवल हिन्दूमत ही नहीं,—वरन् हिन्दुत्व यानि हिन्दूधर्म जिसका सैकड़ों युद्ध-क्षेत्रों में और राजनीति की सभाओं में सामना किया जारह था। हिन्दुत्व ने हमारी समस्त राजनीति की देह में रीढ़ की हड्डी का काम किया और मालाबार के नैयारों को काशमीरी ब्राह्मणों के कष्टों पर आंसू तक बहाने के लिए बाध्य किया। हमारे भाटों ने हिन्दुओं की अवनति पर विलाप किया, हमारे वीरों ने हिन्दुओं के युद्धों को लड़ा, और सन्तों ने हिन्दुओं के प्रयत्नों पर आशीर्वाद दिए, हमारे राजनीतिज्ञों ने हिन्दुओं के भाग्य का निर्माण किया और हमारी माताओं ने हिन्दुओं के घावों पर आंसू बहाए और उनकी विजय पर सुख और आनन्द का अनुभव किया।

अपने पूर्वजों के सम्पूर्ण कथनों और लेखों को जो यहां पर उपयुक्त हैं पूर्णतया लिखने के लिए एक बड़े ग्रन्थ की आवश्यकता होगी। किन्तु वर्तमान रीति हमें इतना महत्त्वपूर्ण कार्य होने पर भी अपने लक्ष्य से इधर उधर विचलित होने से रोकती

है। अतएव हमें अपनी हिन्दू जाति के आदि प्रतिनिधियों के केवल कुछ ही पदों का उल्लेख करके अपनी तृप्ति कर लेनी चाहिए।

हिन्दी भाषा में सम्पूर्ण नवीन एवं प्राचीन लिखित ग्रन्थों में चन्द्रबरदाई द्वारा लिखित महान वीर गाथा "पृथ्वीराज रासो" वर्तमान खोजों के अनुसार सबसे प्रचीन और प्रामाणिक ग्रन्थ है। केवल एक ही कविता है जो उससे प्राचीन समझी जाती है। किन्तु भाग्य से और विलक्षण रूप से हमारे उत्तर की प्राकृतिक भाषा के साहित्य में हिन्दुस्तान शब्द का गौरव और देश भक्ति की भावना से पूर्ण उल्लेख मिलता है। चन्द्रबरदाई के पिता वेन कवि अजमेर के राजा पृथ्वीराज के पिता को सम्बोधित करते हुए कहते हैं :—

अटल ठाठ महिपाट, अटल तारागढयानं।
अटल नग्र अजमेर, अटल हिन्दब अस्थानं॥
अटल तेग परताप, अटल लंकागढ़ डंडिय।
अटल आप चहुबान, अटल भूमि जस मंडिय॥
संभरी भूप सोमेस नृप, अटल छत्र ओपै सुसर।
कविराव वेन आसीस दे, अटल जगां रजेसकर॥

चन्दवरदाई जो हिन्दी साहित्य के वास्तविक आदि कवि कहलाए जा सकते हैं, हिन्दू, हिंदवान और हिंद शब्दों का इतनी बार और इतना स्वाभाविक प्रयोग करते हैं कि यह मानने में तनिक भी सन्देह नहीं रहता कि ये शब्द ग्यारहवीं शताब्दी में भी पूर्णतया प्रचलित और सामान्य थे, जबकि मुसलमान पंजाब में

भी अपने चरण नहीं जमा पाए थे और इसलिए वे गौरवान्वित और स्वाधीन राजपूतों को अपने शत्रु द्वारा दिया हुआ घृणित उपनाम अपनाने में प्रभावित नहीं कर सके थे। जिसे कि वे अपना राष्ट्रीय और गौरवशील विशेषण समझते। इसका वर्णन करते हुए कि किस प्रकार शाहबुद्दीन हिन्दुओं द्वारा बन्दी बनाया गया था और पृथ्वीराज महान द्वारा इस प्रतिज्ञा पर छोड़ दिया गया था कि वह फिर कभी "हिन्दुओं" पर आक्रमण नहीं करेगा— चन्द कहत हैं:—

"राखि पंचदिन साहि अदब आदर बहु किन्नौ।
सुज हुसेन गाजी सुपूत हथ्थै ग्रहि दिन्नौ॥
किय सलाम तिन बार जाहु अपन्ने सुथानह।
मति हिन्दु पर साहि सज्जि आओ स्वस्थानह॥"

(पृ० रासो स० ६)

किन्तु शाहबुद्दीन हिन्दू वीरता से पराजित होने वाला व्यक्ति नहीं था। उसने बार बार चढ़ाई की और दैविक विद्वेषी नारद के महान् आनन्द के लिए भयानक लड़ाई आरम्भ होगई:—

"जब हिन्दू दल जोर हुआ छुट्टि भीर धर भ्रम।
असमय अरवस्थान चला करन उद्बसाक्रम॥"

और फिर— "जुरे हिन्दु भीरं, बहे खग्ग तारं,
मुखे मारमारं बहे सूर सारं,
हिन्दु म्लेच्छ अघाई घाइन,
नंचि नारद युद्ध चायन॥"

हिन्दुओं को पराजित करने के प्रयत्नों के फलस्वरूप शहाबुद्दीन उस दिन फिर पराजित हुआ और विजय के समाचारों से दिल्ली आनन्द में उन्मत्त हो उठी कि पज्जूनराट ने फिर एक बार शाहबुद्दीन को बन्दी बना लिया है। प्रजा ने अपने सम्राट पृथ्वी का स्वागत करते हुए कहा :—

आज भाग चहु आन घर।
आज भाग हिंदवान॥
इन जीवत दिल्लीश्वर।
गंज न सक्कै आन॥"

उस मनुष्य ने एक बार फिर सत्य प्रतिज्ञा करके जिसने ऐसी ही पहली प्रतिज्ञाओं को भंग किया था, शाह को उन्मुक्त करने में सफलता प्राप्त की, और एक बार फिर, किन्तु अन्तिम बार, उसने हिन्दुस्तान पर चढ़ाई की और पराजित करती हुई शक्ति से वह दिल्ली के मुख द्वारों पर ही आगया। "हिन्दी पति" पृथ्वीराज ने युद्ध सभा को आमन्त्रित किया, शाहबुद्दीन ने धृष्टता से ललकारा है, रावल और सामन्त क्रोधाग्नि में भड़क उठे हैं, जबकि चामुण्डराए मुसलमान राजदूत को शाह को अपनी धूल चाटने की बात को स्मरण करा देने के लिए आदेश देता है और कहता है :—

"निर्लज म्लेच्छ लजै नहीं, हम हिन्दू लजवान्॥"

विनाशकारी दिवस निकट आगया दोनों पक्षों ने समझा कि वह निराशा से पूर्ण एक खेल था। हम्मीर की हानि (त्याग) के अवसर पर चंदवरदाई दुर्गा-देवी के मन्दिर में

जाता है और इतनी दयनीय और इतनी देशभक्ति से पूर्ण प्रार्थना करता है—

"द्रग्गे हिंदुराजान वंदीन आयं। जपै जाप जालधं तू सहायं॥
नमस्ते नमस्ते इ जालंधरानी। सुरं आसुरं नाग पूजा प्रमानी॥"

युद्ध के विनाशक परिमाणों का और उस षडयंत्र का जिनसे कि पृथ्वीराज ने शाहबुद्दीन को मार दिया था वर्णन करने के पश्चात् वह कविता पराजित हिंदू सम्राट को मर्म-स्पर्शी शब्दो में सहनुभूति प्रकट करती हुई समाप्त होती है :—

"धनि हिंदु पृथ्वीराज, जिनै रजवट्ट उजरिय।
धनि हिंदु पृथ्वीराज, बोल कलिमझ्झ उगारिए॥
धनि हिंदु पृथ्वीराज, जेन सुविहान ह संध्यों।
बार बारह ग्रहि मुक्कि, अंतकाल सर बंध्यों॥"

यह ध्यान देने योग्य है कि यद्यपि भारत शब्द रासो में महाभारत के अर्थ में अनेक बार प्रयुक्त हुआ है तिसपर भी वह कभी भारतवर्ष के अर्थ में प्रयुक्त नहीं हुआ। हम इन उत्तर की प्राकृत गाथाओं में जो भी पाते हैं वह हमारी भाषा के बाद के विकास में भी हिन्दू-जागृति और हिन्दू-स्वाधीनता के युद्ध काल से अबतक सत्य मिलता है। उस हलचल के सर्वोच्च मन्त्री और आदेशक रामदास अपनी गुप्त और भविष्यद्गामी वाणियों में उस स्वप्न का वर्णन करते हैं जिसका उन्होंने अनुभव किया था और विजय एवं धन्यवाद से उतना बतलाते हैं जितना कि सत्य सिद्ध हो चुका था :—

❀ स्वप्नीं जें देखिलें रात्री, तें तें तैसेंचि होतें तें
हिंडतां फिरतां गेलों, आनन्दवनभुवनी ॥ १ ॥
बुडाले सर्व ही पापी, हिन्दुस्थान बलावलें
अभक्तांचा क्षयो आला, आनदंवन भूवनी ॥ २ ॥
कल्पांत मांडिला मोठा, म्लेच्छ दैत्य बुडावया
कैपक्ष घेतला देवी, आनदं वन भूवनी ॥ ३ ॥
येथून बाढला धर्म, राजधर्म समाज में
संतोष मांडिला मोठा, आनदंवन भूवनीं ॥ ४ ॥
बुडाला अरंख्या पापी, म्लेच्छ सहांर जाहला
मोडिलीं मांडिलीं छत्रें, आनदंवद भूवनीं ॥ ५ ॥
बोलणें वाउगें होतें, चालसें पाहिजे वरें
पुढें कडेल तें रवरें, आनन्द बन भूवनीं ॥ ६ ॥
उदडं जाहले पाणी, स्वानसंध्या करस्वया
जपतप अनुष्ठानें, आनदंवन भूवनी ॥ ७ ॥
स्मरलें लिहिलें आहे, बोलता चालता हरी
राम कर्ताराम भोक्ता, आनदंवन भूवनीं ॥ ८ ॥

❀ महा अन्धकार में मैंने स्वप्न देखा :— देखो स्वप्न भी सत्य होगए। हिन्दुस्थान जागृत होगया, अपने बल पर खड़ा होगया, और जो उससे घृणा करते थे और इश्वर के प्रति पाप करते थे एक महाशक्ति से दबा दिए गए हैं। वास्तव में यह पवित्र और सुखी देश है। क्योंकि ईश्वर ने उसके कार्य को अपना समझ लिया है और औरंगजेब पराजित होगया है। पदच्युत सिंहासन पर बैठ गए हैं और गद्दी नशीन गद्दी से

हिन्दू कवि भूषण जो हमारे राष्ट्रीय भाटों (कवियों) में सबसे प्रमुख था :और जिसने उत्तर से दक्षिण तक समस्त देश के "हिन्दुवान" को हिन्दू-स्वाधीनता के युद्ध काल में उद्योगों और विजयों को प्राप्त करने की जागृति दी थी-औरंगज़ेब को ललकार कर कहता है:—

❋ लाज धरो शिवजी से लरौ सब सैयद सेख पठानपठाएके।
भूषध ह्यां गढ़कोटन हारे उहां तुग क्यों मठ तोरेरिसायके॥
हिन्दुन के पतिसों न बिसात सतावत हिन्दू गरीबन पाएके।
लीजै कलंक न दिल्ली के बालम आलम आलमगीर कहायके॥

दूसरे स्थान पर भूषण कहते हैं:—

"जगत मैं जीते महावीर महाराजन तै
महाराज बावन हूं पातसाह लेवाने।
पातसाह बावनौ दिल्ली के पातशाह दिल्लीपति
पातसाह जीसो हिन्दुपति सेवाने।"
"दाढी के रखैयन की दाडीसी १ रहित छाति
बाढी जस मर्याद हद हिंदुवाने की

उतार दिए गए हैं। शब्दों से अधिक व्यवाहारों ने परिचय दिया। वास्तव में हिन्दुस्थान एक पवित्र और सुखी देश है। अब राजधर्म धर्म की सहायता पर है, शक्ति से सत्यता हिन्द का पवित्र जल अब पवित्र नहीं रहा हमें एक बार फिर अपने शरीर आदि को शुद्ध करने की योग्यता दे सकती है। हो: अब राम ने इस देश को फिर पवित्र और आनन्ददायक बना दिया है।

कढी गयि [1] रयित के मनकी कसक मिट गयी
ठसक तमाम तुरकाने की
भूषणभनत दिल्लीपति दिल धकधका सुनिसुनि
धाक सिवराज मरदाने की
मोठी भायि चंडी बिन चोटी के चबाये सीस
खोटी भयि संपति चकताके २ घराने की ।।"

---

* तू बेचारे हिन्दू फ़कीरों और भिक्षुओं के ऊपर विजय प्राप्त करने में इतना व्यस्त है। स्वयंहिन्दूपति से लड़ने में इतनी लज्जा क्यों आती है ? यहां के सत्य-युद्ध में उसने किले पर किले खो दिए: कदाचित इसी कारण ही वहां पर मठों, मन्दिरों और बैठकों को नष्ट करके अपनी महत्ता स्थापित करने का प्रयत्न कर रहा है।

हिन्दू सम्राट शिवाजी से पराजित हो जाने पर तुझे अपने आपको आलमगीर-संसार विजेता कहलाने में क्या लज्जा नहीं आती ?

१—जली सी २ बाबर के घराने की।

शिवाजी द्वारा किए हुए कार्यों का वर्णन करते हुए भूषण कहते हैं :— रखि हिंदुवानी, हिंदुवान के तिलक राख्यो,
स्मृति और पुराण राख्यो, वेद विधी सुनि मैं
राखी रजपूति राजधानी राखी राजनकी,
धरामें धरम राख्यो गुण गुणी में

भूषण सुकवि जीति हद मरहटन की, देश देश
कीरती वखानि तव सुनि में
साहि के सुपूत सिवराज समसेर तैरी, दिल्लीदल
दावि के, दिवाल १ राखि दुनि मैं ॥

शिवाजी और उनके साथियों के विजयी कार्यों को इसी दृष्टिकोण से सम्पूर्ण हिन्दुस्थान में सब ने देखा था। मराठा न होते हुए भी भूषण ने शिवाजी से बाजीराव तक के मराठे योध्दाओं की विजयों पर अपूर्व गौरव प्राप्त किया था (ग्रन्थावली-विस्तार के लिए भूषण) वह कट्टर हिन्दु (हन्दुओं का) था और वह अपने जीवन के अन्तिम दिवस तक भी उसके उत्तेजित गान गाता रहा जिसमें हिन्दू-राष्ट्रीयता की हलचल के दृष्टिकोण पर जोर दिया गया था जिससे उसके महान् नेताओं पर प्रभाव पड़ता। इनमें छत्रसाल बुन्देल खण्ड के वीर राजा, भूषण के दूसरे सर्वप्रिय राजा थे:—

हैवर२ हरट्ट३ साजि, गैवर,४ गरट्ट५ समपैदर यह फौज तरकान की

भूषण भनत रायचंपतिको छत्रसाल रन्यो्याल व्हैके ढाल हिंदवाने की"

छत्रसाल को यह अनुचित उपहार नहीं दिया गया था। छत्रसाल शिवाजी, राजसिंह, गुरुगोविन्द सिंह के समान ही थे। वे "ढाल हिंदुवने की" ही थे। उन्होंने अपने आप को

---

१ देवालय, २ अश्व, ३ हृष्टपुष्ट, ४ गजवर, ५ संघ।

"हिन्दुत्व" का योद्धा समझा था। छत्रसाल कहते हैं:—

हिन्दू तुरक दीन द्वै गाए तिनसों बैर सदा चलि आए॥
लेख्यो सुर असुरन को जैसो। केहरि करिन बखानो तैसो॥
जबसे शहा तखत पर बैठो। तब तै हिंदुन सौ उर डाठे॥
सहगेकर तीरथनि लगाये। वेद देवाले निडर ढहाये॥
सब रजपूत सीर नित नावैं। ऐड करे नित पैदल धावे॥
ऐड एक शिवराज निबाही। करै आपके चित्त की चाही॥
आठ पातसाही झुक झोरै। सूबनि बांधि डांड लै छोरै॥

शिवा जी से छत्रसाल की ऐतिहासिक भेंट के पश्चात महान बुन्देल नेता—शिवा जी से प्रोत्साहि होकर "तुम छत्री सिरताज। जीत आपनी भूमिकों करौ देश को राज।"—सुजान सिंह से मिला था जो बुन्देलखण्ड में एक शक्तिशाली और राजपूत योद्धा थे। निम्न लिखित वार्तालाप में सुजान सिंह देश की राज नैतिक स्थिति का मार्मिक चित्र खीचता है—

"पातसाह लागे करन, हिन्दु धर्म को नासु
सुधि करिचंपतिराय की, लई बुन्देला सासु
जबतै चंपति करयौ पयानौ, तबतै परयौ हीन हिंदवानो
लग्यो होग तुरकाज को जोरा, को राखे हिंदुन को तोरा
अब जो तुम कटि कसौ कृपानी, तौ फिर चढ़े हिंदुमुख पानी"

बूढ़े राजा सुजान सिंह ने इस प्रकार कहते हुए अपनी तलवार और हृदय को छत्रसाल को उपहार में दे दिया और उसे तथा सउके उद्देश्य को आशीर्वाद दिया:—

यह कहि प्रीति हिय उमगाई । दिवे पान किरपान बधाई
दोऊ हाथ माथ हर राखे । पूरन करौ काज अभिलाखे
हिंदु धरम जग जाई चलावो । दौर दिलीदल हलनि हलावो
(छत्र प्रकाश)❀

ऐसा लिखा हुआ मिलता है कि तेग बहादुर—महान गुरू—ने जिन्होंने न केवल पंजाब में इस हिन्दु-स्वाधीनता के युद्ध को संचालित ही किया था वरन् उसके लिए अपना जीवन भी दे डाला था—काश्मीर के उन ब्राह्मणों को शिक्षा भी दी थी जिन्हों ने "इस्लाम या मृत्यु" से भतभीत होकर और दुखित होकर उनसे सहायता की याचना करते हुए कहा था:—

१ तुम सुनो दिजेसु ढिग तुर्केसु अबैचु इमगाबो
इक पीर हमारा हिंदु भारा भाईचारा लख पावो
हैं तेग बहादुर जगत उजागर ता आगर तुर्क करो
तिस पाछे तब ही हम फिर सबही बन है तुरक भरो ॥
(पंथ प्रकाश)

❀ऐतिहासिक ग्रन्थ "छत्र प्रकाश" जिसमें छत्रसाल के राज्य की घटनाओं का वर्णन है— छत्रसाल के आदेशानुसार लाल कवि द्वारा लिखा गया था ।

१ ऐ ब्राह्मणों ! सुनो । तुम जाओ और निर्भय होकर तुर्कों (मुसलमानों) से कहो "हमारा एक महान हिंदू नेता है, जिसके लाखो अनुगामी हैं। उनका नाम तेगबहादुर है— जो मानव जाति को जागृत और उच्च करने वाले हैं— पहिले उसे इस्लाम धर्म स्वीकार कराओ और तब हम सब भी वैसाही कर लेंगे ।

और जब वह शत्रुओं की जाति और धर्म से ललकारा गया था, उसने उत्तेजित शब्दों में उत्तर दिया था:—

† "तिन तेसुन श्री तेगबहादुर। धर्म निवाहन विषे बहादुर
उत्तर भनयों धर्म हम हिंदू। अति प्रय कोकिय करे निकंदु
(सूर्य प्रकाश)

उन के प्रसिद्ध पुत्र गुरू गोविंदसिंह जी हमारी हिन्दू जाति और संस्कृति के एक साथ ही कवि, उपदेशक और योद्धा सब कुछ थे। वे उत्साहित शब्दों में लिखते हैं:—

§ "सकल जगत में खालसा पंत गाजे
जगे धर्म हिंदु, सकल भंड भाजे ॥
(विचित्र नाटक)

१ शिवा जी का इतिहासकार प्राचीन ग्रन्थ "शिवछत्र पतीचें चरित्र" में कहता है:—शिवाजीचे मनांत आलें जे आपण हिंदू, सर्व दक्षिण देश यवनानी पादाक्रांत केल. क्षेत्रासपीडा केली. हिंदू धर्म बुडविला, प्राणही देऊन धर्म रक्षूं। आपले पराक्रमें नयीन दौलत संपावू। ते अन्न भक्षूं।

---

† उनको सुनने के पश्चात गुरू तेगबहादुर ने जो धर्म के नायक और योद्धा थे—उत्तर दिया "मैं हिन्दू धर्म की अवहेलना किस प्रकार कर सकता हूं जो मुझको हृदय से भी प्यारा है।

§ ये खालसा पतं हर जगह उन्नति करे (जिस से) हिंदू धर्म दीर्घ काल तक जीवित रहे और असत्य अहंकार का नाश हो ॥

१ "शिवाजी" ने अपने मनमें सोचा—"हम हिंदू हैं।

२ किन्तु चतुर और विश्वासपात्र दाया जी ने अनुमति दी थी–आपण म्हणतां तें कार्य चागलें खरें, पण याचा शेंवट लागणें परमदुष्कर। यास मातवर स्थलें असावीं। हिंदू राजे व हिंदू फौजा जगजागीं साह्यकर्त्या असाव्या। ईश्वराचें अनुकूल व सिद्ध पुरुषांस्चा आशिर्वाद असतां अशा गोष्टी घड़तील।"

(चिटणीस बरवर)

३ तिसपर भी दादा जी सम्पूर्ण हलचल (प्रगति) के पथ प्रदर्शक थे। युवक शिवा जी ने १६४६ ई० में अपने एक छोटे साथी को लिखा था "शहास तुम्हो आपली वेमानगिरी करीत नाहीं, आदि कुलदेव स्वपंभू, त्यानी आम्हास यश दिलें व पुढ़ें

मुसलमानों ने समस्त दक्षिण पर अधिपत्य जमा लिया है। उन्हों ने हमारे पवित्र स्थानों को दूषित कर दिया है। वास्तव में उन्होंने हमारे धर्म को भ्रष्ट कर दिया है। अतएव हम अपने धर्म की रक्षा करेंगे और उसके लिए अपने प्राणों तक को उत्सर्ग करदेंगे। अपनी शक्ति से नवीन राज्यों की स्थापता करेंगे और तब सुख से रोटी खायेंगे।"

२ तम्हारे उपाय वास्तव में अति उत्तम हैं: किन्तु उनको अन्त तक निबाहना महान कठिन होगा। पहिले तो तुमको शक्तिशाली केन्द्र स्थापित करने पड़ेंगे। हिंदू राजाओं और हिंदू सैनिकों को स्थान स्थान से सहायता करनी होगी। फिर ईश्वर को हमारे पक्ष में होना चाहिये और हमें उत्कृष्ट सन्तों के आशीर्वाद प्राप्त होने चाहिएं। और तब ऐसा होना सम्भव है।"

तः ननोरथ हिंदवी स्वराज्य करून पुरविणार आहे हें राज्य व्हावें हें श्रीचें मनांत फार आहे"

श्रीयुत राजवादे के पास उस पत्र की मूलप्रति है जिससे सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी में महान हिंदू प्रगति की आत्मा का ठीक २ पता चलता है। वह कोई जंगली हलचल नहीं थी—वह हिंदवी स्वराज्य था—हिंदू साम्राज्य था— यह वह उच्च और महान आदर्श था जिसने शिवा जी की कल्पना को प्रोज्वलित किया था और उनके कार्यों को प्रोत्साहन दिया था—जबकि वह बीस वर्ष से कम ही थे। हमें उन्हीं के शब्द उपलब्ध हैं।

किन्तु जब एक राजपूत राजा—जैसिंह शिवाजी और उनकी प्रगति को पराजित करने के लिए आया तो स्वभावतः ही शिवा जी की सामना करने की शक्ति की तीव्रता मन्द पड़ गई। हिंदुत्व की प्राचीन ढाल राजपूतों का अपने तथा अपने सहधर्मियों और हिंदू भाइयों का मुसलमानों की विजय के लिए रक्त बहाना नितान्त निराशा से पूर्ण कार्य था। शिवा जी जय सिंह से कहते हैं:—

---

३ "सम्राट के प्रति हम कृतघ्न नहीं होंगे। हमारा आदि कुल-ईश्वर अनादि है (अतएव सर्व शक्तिमान है) अबतक उसने हमारे प्रयत्नों को सफल किया है और भविष्य में भी मेरे जीवन की आकांक्षा की हिंदवी स्वराज्य (Hindu Independence) की स्थापना करके पूर्ण करेगा। वास्तव में ईश्वर की हार्दिक इच्छा है कि ऐसा राज्य स्थापित हो।"

‡ "तुम्हास जे किल्लें पाहिजेत ते भी देतों, निशाण चढ़ावितों, पण मुसलमानास यश न देणें भी हिंदू आपण रजपूत तेव्हां हिंदूच राज्य मूलचें हिंतूचें हिंदूधर्म रक्षका पुढ़ें भी ढोकें शतदा नमवीन पण हिंदुधर्मांची मान हानी होईल असें कधीही घडणार नाही।"

निस्सन्देह जयसिंह के ऊपर उचित प्रभाव पड़ा और उसने उत्तर दिया १ "औरंगजेब बादशाह पृथ्वीपति त्याशी तुम्हीं सख्य करावें शत्रुत्वानें राहून या कालीं परिणाम लागणार नाहीं आम्हीं हिंदू जयपुरचे राजे तम्हीं हिंदूच तुम्हीं हिंदू धर्म स्थापन करतां यास्तव आम्हीं तुम्हास अनुकूल आहों"

---

‡ "मैं तुम्हें वे सब किले अर्पण करने के लिए तैयार हूं जिन्हें तुम मांगो। मैं स्वयं उनपर तुम्हारा झण्डा फहरा दूंगा। किन्तु उन्हें मुसलमानों को मत जीतने दो। मैं हिन्दू हूं तुम राजपूत हो अतएव हिंदू हो। यह राज्य मूलतः हिन्दुओं का रहा है। मैं उसके आगे सैकड़ों बार अपने मस्तक को नवा दूंगा जो हिंदू धर्म की रक्षा करेगा। किन्तु कोई भी ऐसा कार्य करने को सहमत नहीं होऊंगा जिससे हिंदू धर्म के गौरव को आघात पहुंचने की सम्भावना होगी।

१ सम्राट औरंगजेब बहुत शक्तिशाली बादशाह है। अतएव तुमको उनसे सुलह कर लेनी चाहिए। उससे मित्रता स्थापित करने के पश्चात ही हम शाति से रह सकेंगे। हम जयपुर के

शिवा जी की अध्यक्षता में हिंदू शक्ति के उत्थान ने सम्पूर्ण भारत में हिंदू भावना को जागृत किया था। दुःखितों ने उनको अवतार और त्राता की दृष्टि से देखा। अतएव हमें ज्ञात होता है कि मुसलमानों के आधिपत्य में सेवनूर जिले की रोती हुई प्रजा ने उनसे प्रार्थना की थी— २ 'हा युसुफ फार खस्त आहे बाय कायोरांस उपद्रव देणें जुलूम गोवधादि निंद्य कर्मे आम्ही हत्याचे खाली वागण्यास कंटललो. तुम्हीं हिंदू धर्माचें संस्थापक. म्लेच्छाचे नाशक. म्हणून तम्हाकडे आलों. तम्हकडे आम्ही आलों म्हणून आमचे द्वारा चौकी बसली आहे. अन्न पाण्यावाचून जीव घेथास उदयुक्त झाले आहेत. तरी रात्रीचा दिवस करून येणें."

राजा हिंदू हैं, और तुम भी हिंदू हो हम तुम्हारे पोषक हैं क्योंकि तुम हिंदू धर्म को फिर से स्थापित कर रहे हो।

२ यह युसुफ बड़ा दुष्ट व्यक्ति है। वह स्त्री और बच्चों को कष्ट देता है, धर्म को दूषित करता है और यहां तक कि गौवध जैसे दूषित कार्यों को भी करता है। हम इतने हताश हो गए हैं कि उसकी अध्यक्षता में अधिक नहीं जी सकते। तुम हिंदू धर्म के उन्नायक हो और म्लेच्छों (विदेशियों) के नाशक हो। अतएव इसी से हम तुम्हारी शरण में आए हैं। और चूंकि हम इस प्रकार आए हैं हमारे द्वारों पर रक्षक नियुक्त हैं। वास्तव में उनकी इच्छा हमें यहां भूख और प्यास से तड़पाकर मारने की है। अतएव अपनी शक्ति से रात्रि को दिवस में परिवर्तित करने के लिए आओ।

शिवाजी के तंजोर में जहांजीर को उसके भाई व्यंको जी को इस प्रतिज्ञा पर लौटा देने के पश्चात् कि उन्हें मुसलमानों का आधिपत्य अस्वीकार करना होगा, शिवाजी लिखते हैं—

१—"दुष्ट हिंदु विद्वेषी यांस आपले राज्यांतढेवूं नये।

संताजी और उनके भाइयों की स्वाधीनता के युद्ध की राष्ट्रीय सेवाओं की प्रशंसायुक्त भावना को व्यक्त करने के लिए राजाराम ने बहीरजी को "हिन्दुराव" की उच्च और गौरवान्वित उपाधि प्रदान की थी। जब जींजी (*ginji*) का घेरा मरहठों को किले में घुस जाने को वाध्य कर रहा था। मुगल सेनानायक की अध्यक्षता में उन पर विजय प्राप्त करने का प्रयत्न किया गया था:—

२—"नागोजी राजे यांजकडे संधान केले, तुम्ही आम्हीं एक झाल्यास ही फौज मोडून हिन्दुधर्म जतन करूं त्यापक्षीं तुम्हीं फुटून आम्हाकडे यावे" तेव्हां नागोजी राजे मुसलमानी नोकरी सोडून, मोर्चें उठवून शहरांत ५००० फौजें निशीं गेलें ....शिर्के हे मोगलांचे तावेदार बनले (कारण त्यांचें संभाजीने

१—जो हिन्दुओं से घृणा करने काले हैं तुम्हारे राज्य में उन्हें पद भी नहीं रखना चाहिए।

२—नागोजी राजे से गुप्त सन्धियां की गई थीं कि यदि वह मरहठों से मिल जाता है तो वे शत्रुओं के सैनिकों को तोड़ देंगे और हिन्दू धर्म की रक्षा करेंगे। अतएव उसे उनके पास आना चाहिए। उसके पश्चात् नागोजी राजे ने मुसलमानों की नौकरी छोड़ दी और आक्रमण को पीछे हटाकर नगर में चले

शिरकाण केलें) तेव्हां खंडो बल्लाल म्हणाले "तुमचें शिरकाण केलें तसेंच आमचेही तीन पुरुष हत्तीपयीं मारविलें, परन्तु हिंदुच्या दौल्ती करितां आम्हीं अटत आहोंत तम्ही तों भागीआहां" तेव्हां शिर्के परम का स्थानांत आले व मराठयांस मिलून, गिंजीहून राजाराम शत्रुच्या वेढ्यास तोडून मूटून गेले।

एक बार साहू का जयसिंह (सेवाई) से "हिंदु धर्माचें रक्षण साठीं मी काय व तूं काय केलेंस!" पर वाद विवाद होपड़ा (सरदेसाई मध्य विभाग)।

उसी उत्तेजना ने बाजीराव और नानासाहब के बंशजों को जीवन दिया था। इतिहासज्ञ कहता है—

"पुष्कलानीं बाजीरावाच्याव उद्योगाचें अनुकरण व परिपोष केलेला दिसतों·····ब्रह्मेंद्रस्वामी, गोविंद दीक्षित वगैरे देशभर यात्रा करून अनुभव घेतलेल्या साधु पुरुषांच्याठिकाणीं वरील 'हिन्दुपदशाहीची' भावना स्फुरण पावत होती व ते आपल्या सर्व

अपनी ५०००० सेना के साथ नगर में चले गए। जब शर्के ने मुगलों की नौकरी स्वीकार की (क्योंकि शम्भाजी ने शर्के कुल का बध किया था) खाण्डोजी बल्लाल ने कहा, "शर्के बध कर दिए गए हैं; किन्तु इसी प्रकार मेरे तीन पूर्वज भी हाथी के पैर से दब कर मर गए थे। किन्तु हम हिन्दू-साम्राज्य की स्थापना के लिए लड़ रहे हैं। और तुम्हें हमारा सहायक होना चाहिए। तब शर्के भी इस षडयन्त्र में सम्मिलित होगए और मरहठों की सहायता की जिससे राजाराम घेरे से निकल कर बच गया।

शिष्यवर्गास याच जावने में उपदेशित होते, (सरदसोई) बाजी राव स्वतः म्हणतातः अरे बघतां "बघतः काय ? चला जोरानें चाल करून हिंदुपद पादशाहीस आतां उशीर काय ?" (बाजीराव) १

उस काल के विद्वानों में ब्रह्मेन्द्रस्वामी का प्रमुख स्थान था। २—"परंतु हिंदूधर्माचा उच्छेद ज्या राज्यांत हो तो त्यास भेटणों स्वामीस योग्य वाटलें नाहीं। ·····हिंदूच्या साम्राज्यांत ब्राह्मणांचा छल पोणें ही गोष्ट किती लज्जास्पद आहे ही गोष्ट त्यानें शाहू च्या मनांत भरवून दिली।" (सरवेसाई)

मथुराबाई इन स्वामी को लिखती हैः—१ "शंकराजी मोहिते, गणोजी शिते, खंगेजी नालकर, रामाजी खण्डे, कृष्णाजीनाडे

---

१ "ऐसा ज्ञात होता है कि औरों ने भी बाजीराव को उसके महान् कार्यों को पूर्ण करने के लिए सहायता दी थी अथवा उसका अनुकरण किया था·······। हिन्दू पादशाही (Hindu soveriegnty) का उपरोक्त विचार ब्रह्मेन्द्रस्वामी, गोविन्द दीक्षित तथा और भी ऐसे ही सन्तों के हृदय को जागृत कर रहा था, जो सम्पूर्ण देश में यात्राएँ करके अनुभव प्राप्त किया करते थे। वे अपने शिष्यों को उसी उद्देश्य से शिक्षा और आदेश दिया करते थे (सरदेसाई)। बाजीराव स्वयं कहते हैं, "विलम्ब क्योंकरते हो ? अन्धाधुन्ध घुस जाओ, धावा बोलदो; और तब हिन्दू पादशाही मिल जायगी।" (बाजीराव)

२—"किन्तु महेन्द्र स्वामी ने उनसे मिलना उचित नहीं समझा (जिसके राज्य में हिन्दूधर्म दूषित किया जारहा

इत्यादि मातबर सरदारनीं राज्य रक्षण करून शामलांचामोड केला व कोकणांत हिंदूधर्म राखला।" इस वीर स्त्री—मथुरावाई अगंर के द्वारा भेजे गए समस्त पत्र इतनी मातृ भक्ति और ओज से पूर्ण हैं कि वे उन सब व्यक्तियों का जो हिन्दू पुनर्निर्माण की वास्तविक जागृति कों समझना चाहते हैं ध्यान अवश्य आकर्षित करेंगे।

गोआ में पुर्तगालों की धर्मान्धता योरूपीय खोज का भारतीय संस्करण था। एक बार उन्होंने सम्पूर्ण हिन्दू धार्मिक परम्पराओं और त्यौहारों को खुले तौरे पर मनाने से रोक दिया था। तब प्रजाने अंताजी रघुनाथ को उत्साहित किया। आज्ञा का उलंघन किया और अन्य हिदुओं को भी ऐसा ही करने के लिए प्रोत्साहन दिया। किन्तु वह भली प्रकार जानता था कि निर्बल निष्क्रिय अवरोध असह्य आपत्ति ही है। उस समय की परिस्थितियों में विजयी होने के लिए किसी बाजीराव अथवा चिम्मन जी की तलवार का सहारा लेना अनिवार्य था वह अंताजी रघुनाथ ही थे

था!·······उसने शाहू के मस्तिष्क पर प्रभाव डाला कि यह कितना गृणास्पद था कि हिन्दू राजयों में देवता और ब्राह्मणों को अनाचार करने के लिए अधिपत्य में रक्खा जावे —(सरदेसाई)

१—शंकराजी मोहिते, रानोजी सिन्धे, खांडोजी नालकर, रामाजी खण्डे, कृष्णाजी मोद और अन्य शक्तिशाली सरदारों ने कोनकन में राज्य सुरक्षित रक्खा है, मुसलमानों को भगा दिया है और हिन्दूधर्म की रक्षा की है।

जिन्होंने भारत में पुर्तगालों के राज्य में विप्लव उत्पन्न कर दिया था, जिन्हें समस्त हिन्दू नेताओं की सहानुभूति प्राप्त हुई थी और वास्तव में मरहठा चढ़ाई को संचालित करने में इन्हीं का मुख्य हाथ था जिसके फलस्वरूप बाजीराव के दद्दी चिम्मनजी अप्पाके विजयी धावे के पश्चात् प्रायः सभी हिन्दूराज्य उन्मुक्त होगए थे।

किन्तु इसी समय और वसई की पराजय से पूर्व नादिरशाह ने भारत पर चढ़ाई की और दिल्ली उसके अधिपत्य में आगई मरहठे राजपूत ने बाजीराव को लिखा:—१—"तहमास्यकुलाखान कांही देव नाहीं ने पृथ्वी कापून काढ़ील जबरदस्ताशीं सुलुख करील म्हणून मानवर फौजेनिशीं यावें। आधीं जबरदस्ती व मग सुलुख आतांमारे रजपूत व स्वामी (बाजीराव) एक जागा आलिया निकाल पडेल समस्तांस (हिंदूस) बुदेले वगैरे एक जागा करून मोठाभाव दीखविला पाहिजे। नादिरशाहा माघारा जात नाहीं, हिन्दूराज्यावरी निघेल·······रायांचे (सवाई जयसिंग) मनों राणाजीस तख्तावर बसवावें असें आहे हिन्दूराजेसवाई आदि करून स्वामीचे स्वारीची मार्ग प्रतीक्षा करतात। स्वामीचें पुष्टिबल होताच जाट वगैरे फौज दिल्लींवरी पाठवून सवाई जी आपण दिल्लीस जावार।" (धोंडो गोविन्द का बाजीराव को पत्र)

१—"तहमस्यकुलीख़ान् (नादिरशाह) कोई दैविक सत्ता नहीं है जिसमें वह सम्पूर्ण सृष्टि का नाश करदेगा। उसे उनसे सन्धि करनी पड़ेगी जो उससे बलवान् सिद्ध होंगे। अतएव श्रीमन् (बाजीराव) को शक्तिशाली सेना को लेकर आना चाहिए। शान्ति युद्ध के पश्चात् ही स्थापित होसकती है। हमें निश्चित परिणाम

किन्तु बसई अब तक रुका हुआ था मगर बाजीराव वहाँ समय में न पहुँच सके। वह अपनी अयोग्यताओं और असुविधाओं में लगा था। वह लिखते हैं २—"हिंदुलोकांस संकट थोर प्राप्त झालें आहे, अद्याप बसई आली नाहीं......ऐशास तमाम मराठी फौजा एक हो ऊन चमेली पार व्हावें त्यास (नादिरास) अलीमडे मेऊं देऊं नऐ अस विचार आहे।" (बाजीराव ने ब्रह्मेन्द्रस्वाची को लिखा)

की आशा है क्योंकि समस्त राजपूत योद्धा और श्रीमान् मिलगए हैं। हमें बुन्देले तथा अन्य सब हिन्दुओं को एक कर देना चाहिए और तब शक्तिशाली पक्ष से सामना करना चाहिए। नादिरशाह वापस जाना नही चाहता वह हिन्दू राज्यों पर ही आक्रमण करेगा। सवाई जयसिंह की इच्छा है कि रानाजी (उदयपुर के) को साम्राज्य की गद्दी पर बैठा दिया जावे। सवाई के सहित हिन्दू सम्राट श्रीमान् के पुनर्निमाण की ओर ताक रहे हैं। वास्तव में जैसे ही श्रीमान् शक्ति सम्पन्न सहातया देंगे, सवाई जी तैसे ही दिल्ली की ओर फौजें भेज देंगे और स्वयं भी चलेंगे। (धान्धों गोविंद का बाजीराव के लिए पत्र)

२—हिन्दू बड़ी भयंकर (खतरनाक) परिस्थिति में पड़ गए हैं। हमने अभी बेसीन पर अधिकार नहीं किया है......इन परिस्थितियों में सम्पूर्ण मरहठा सेनाओं को मिल जाना चाहिए और चमेली नदी को पार करलेना चाहिए। यह उपाय है कि नादिर को आगे नहीं बढ़ने देना चाहिए। (बाजीराव ने ब्रह्मेन्द्र स्वामी को)

किन्तु उनके दुर्जेय उत्साह ने समस्त आपत्तियों पर विजय प्राप्त की। वह आगे लिखते हैं:—१—"आपलीं घरगुतीं मांडणों (रघुजीचें पारिपत्य वगैरे) बाजूला ढेवलीं पाहिजेत आतां सर्व हिन्दुस्तानास एक शत्रु उत्पन्न जाला आहे। मीतर नर्मदा उतरून सर्व मराठी सैन्य चम्बलें पर्यन्त पसरून देणार मग पाहूं घा नादिरशहा कसा खालीं ये तो तो! (बाजीराव का पत्र)

सवाई जयसिंह को अपने हिन्दुत्व पर इतना अधिक अभिमान था जितना हिन्दू-हलचल के किसी भी नेता को होसकता था। उसी ने लोगों-को, मालवा के दुखित हिन्दुओं को, मालवा तक हिन्दू-स्वातन्त्र्य के लिए युद्ध को बढ़ाने की प्रार्थना के लिए उकसाया था, और इस प्रकार समस्त भारत में शिवाजी सम्प्रदाए के अनुयायियों के वंशजो के उद्देश्य को अनुभव करने के लिए लिए आवश्यक प्रयत्न करना था—हिन्दू पद पादशाही का महान् उद्देश्य अपने एक पत्र में पदच्युत और देश भक्त राजपूत राजा लिखता है:"सिद्ध श्री······नंदलाल जी प्रधान व

१—हमें अपने आन्तरिक मतभेदों को दूर रख देना चाहिए (जैसे राघोजी का दण्ड आदि)। अब सम्पूर्ण भारत को एक मात्र शत्रु का सामना करना है। जहां तक मेरा सम्बन्ध है, मैंने नर्मदा को पार करने का निश्चय कर लिया है। और चम्बल तक मरहठा फौजों को फैला देने का विचार कर लिया है। तब हम देखेंगे कि नादिरशाह दक्षिण की ओर किस प्रकार बढ़ता है। (बाजीराय का पत्र)

व भाउशो ठाकूर संस्थान इन्दौर अमरगढ़सु महाराजधिराज श्री सवाई जयसिंहजी कृत प्रमाण वंचजो····सो आपकों लिखते हैं कि बादशाह ने चढ़ाई की है, तो कुछ चिन्ता नहीं। परमात्मा पार लगावेगा बाजीराव पेशवे से हमने आपके निसबत कौल वचन कर लिया है" आगे लिखते हैं:—"हजार शाहवास है आप सब मालवे के सरदार एक रह के हिन्दूधर्म का कल्याण होगा और मालवे में हिन्दूधर्म की बृद्धि होगी इस बात पर विचार कर मालवे में से मुसलमानों को नौ भेद किए और हिन्दू धर्म कायम रक्खा।"

(जयसिंह का पत्र २६—१०—१७२१ ई०) २

बाजीराव का पुत्र नाना साहब वास्तव में उन व्यक्तियों का सबसे श्रेष्ठ नेता था जो हिन्दू-स्वाधीन्ता के महान्-उद्योग और हिंदूपदपादशाही के स्थापन में सन्मुख आगए थे। उनके पत्रव्यवहार स्वयं पढ़ने योग्य हैं। जहां कहीं भी हम उन्हें पाते हैं हिन्दुत्व का योद्धा ही पाते हैं। वे ताराबाई को लिखते हैं:—१ "मोगल केवल हिन्दू राज्याजे शत्रु त्यांस देखील अनुसंधाने होते असंता सेवकच वांकडे वर्ततात हा दोष!" (नाना साहब का पत्र)

२—अर्थ स्पष्ट है।

१—मुगल (निज़ाम) हिन्दू शक्ति का चिर-शत्रु है, और तब भी तुम उससे सन्धि चर्चा कर रहे हो मुझ-अपने विनम्र दास को इन विकृत कार्यों के लिए क्षमा करेंगे (नाना साहब का पत्र)

यद्यपि पानीपत के मैदान में काफी हानि उठानी पड़ी थी तिसपर भी सब ही कुछ नष्ट नहीं होगया था। क्योंकि दो व्यक्ति युद्ध से बचे थे जिन्होंने अपने उद्देष्य की रक्षा की थी नाना फड़नवीस और महाधाजी सोन्धिया–हिन्दू शक्ति के मस्तिन्तष्क, तलवार और ढाल–जो चालीस वर्ष से भी अधिक पानीपत की घोर पराजय के पश्चात भी विचारते रहे, कार्य करते रहे और लड़ते रहे। क्योंकि, वह पराजय विजेताओं के लिए भारी धक्का थी जिससे हिन्दूओं ने हिन्दूस्थान के वास्तविक राजा बनने में सफलता प्राप्त की थी। राष्ट्रीय मस्तिष्क ने किस प्रकार विजय-सम्पन्न घटनाओं का अनुभव किया था और वे किस प्रकार हिंदुत्व और हिंदू साम्राज्य पर गौरव प्रकट करते थे, उस काल के चतुर राजनीतिज्ञ लेखकों के लेखों से स्पष्टतया पता चल जावेगा। निज़ाम की राजधानी से गोविन्दराव काले ने नाना फड़नवीस को उस समाचार के मिलने पर जिसने सम्पूर्ण महाराष्ट्र को इस किनारे से उसतक आनन्दित किया था जब कि नाना और महाधाजी के बीच का मतभेत दूर हुआ था लिखा:—

१ "पत्र पाहतांच रोमांच उभे राहिले. अति संतोष झाला विस्तार पत्री कितीं लिहूं ? ग्रंथचे ग्रंथचे मनांत आले अटक नदीचे अलिकडे दक्षिण समुद्रदापावेतो हिंदूचें स्थान तुरकस्थान

१—मैंने जब तुम्हारा पत्र पढ़ा मैं आनंद से स्वभावतः खिल उठा। वास्तव में मैंने बड़ी प्रसन्नता पाई। वह सब पत्र में

नव्हे है आपली सिया पांडवापासून विक्रमाजित पार्वेतो त्यांनी राखून उपभोग घेतला त्यां मागें राज्यकर्ते नादान निघाले यवनाचें प्राबल्य झाले चकत्यानीं (बाबरच्या वंशजांनीं) हस्तना पुरचें राज्य घेतलें शेवरीं अलमगिराचे कारकीर्दीत यज्ञोपवीतास साडेतीन रुपये जजेया बरून ओलें अन्न विकत ध्यावें अशी नौबत गुजरली।

त्या दिवसांत कैलासवासी शिवाजी महाराज शककर्ते व कार्य राखते निघाले त्यांनि किंचित कीन्यांत धर्मरक्षत्र केलें पुढें कैलासवासी नाना साहेब व भाऊ साहेब प्रचंड प्रतापसूर्य असे आत्यें कीं असे कधीं आले नाहीं। हल्भीं श्रीमतांचे पुण्य प्रतापें करून व राजेश्री पाटील बुवांच्या बुद्धि व तरवारीच्या पराक्रमें-करून सर्व वरास आलें परंतु आलें कसें ? प्राप्त आलें नेणोंकरून सूलभता वाटलीं अगर मुसलमान कोणी असते तरी मोठे मोठे तवारिखनामे आले असते यवनांच्या जातीत

पूर्णतया नहीं लिखी जा सकती। शब्दों में-मेरा मस्तिष्क विचारों से ओतप्रोत होगया है। अटक से भारतसागर तक का सम्पूर्ण राज्य हिंदुओं का देश है न कि तुरकों का। पांडवों के काल से विक्रमादित्य तक ये हमारे सीमा-प्रदेश रहे हैं। उन्होंने उसकी रक्षा की है और आनंद उठाया है। उनके बाद हमारे राजा नितान्त दुर्बल होगए और मुसलमान (भवन) शक्ति सम्पन्न होगए। मुगलों ने हस्तिनापुर के साम्राज्य को अपनालिया।

इनकी गोष्ट चांगली आल्यास गगनाबरोबर करून शोभावी आमचे हिंदूंत गगनाइतकी आली असतां उद्धार न करावा हे चाल आहे अलभ्य गोष्टी छऽल्या यवनांच्या मनांत कीं काफरशाही आली असें बोल तात।

लेकिन ज्यानीं ज्यानीं हिंदुस्थानांत शिरें उचलली त्यांची पाटील बावांनी फोडली न लाभल्या त्यांचा बंदोबस्त शककर्त्या-प्रमाणों होअन उपभोग ध्यावें पुढेंच आहे कोष्टै पुण्याइंत उणें पडेल आणि काय दृष्ट लागेल नकले आल्या गोष्टी यांत केवल मुलुख, राज्य प्राप्त इतकेंच नाहीं तरी वेदशास्त्र रक्षण, गोब्राहम्ण-प्रतिपालन, सार्वभोमत्व हांती लागणों, कीर्ति यश यांचे नगारे वाजणों इतक्या गोष्टी आहेत हे किमया संभालणों हक्क आपला व पाटील बाबांचा त्यांत वेंत्यास पडला की दोस्त दुष्मन मजबूत सशंय दूर आला इति चांगले अति चांगले दुष्मन उशापाय

और फलस्वरूप आलमगीर के राज्यकाल में हम इतनी दुर्दशा को पहुंच गए थे कि प्रत्येक यज्ञोपवीत धारी (जनेऊ धारण करने वाले को) पका हुआ खाना मोल लेने के लिए तीन रु० आठ आने का जाज़िया कर देना पड़ता था।

इसी समय शिवाजी का जन्म हुआ जिन्होंने उस शिष्ट युग की स्थापना की और धर्म की रक्षा की। उसके पश्चात् नाना साहब और भाऊ साहब जैसे स्मरण करने योग्य वीर उत्पन्न हुए जिनमें महान शक्ति थी। और अब हमें हमारी प्रत्येक वस्तु श्रीमंत (पेशवा) के विख्यात नेतृत्व में पतिल बोआ की बहादुरी और कार्यकुशलता के कारण प्राप्त होचुकी थी। किन्तु

थ्याशीं लागून आहेत चेन नव्हते आपण लिहिल्यावरून मन स्वस्थ आलें (इ० स० १७६३)

यह एक मात्र पत्र जो इतनो सरलता और उत्तमता से लिखा गया है हमारे इतिहास की भावना को बड़े बड़े अरुचिपूर्ण ग्रन्थों से अधिक वास्तविक रूप में व्यक्त करता है। हिंदू और हिंदुस्थान की सच्ची व्युत्पत्ति को कितनी स्वाभाविकता से दर्शाता है और इसका कितना प्रोज्वल उल्लेख मिलता है कि इस

यह सब किस प्रकार सम्पन्न हुआ था। क्योंकि जो हमने जीता था, समझ लिया कि वह सरल कार्य था। यदि यह बातें मुसलमानों कि हुई होतीं तो उसके विषय से इतिहासों के ग्रन्थ के ग्रन्थ लिख दिए गए होते। मुसलमानों में छोटी सी घटना भी आकास में चढ़ा दी जाती है। जब कि हिन्दुओं में हम इन्हीं अनुसन्धानों का वर्णन करना नहीं चाहते जो चाहे कितने भी महान रहे हों। वास्तव में ऐसे कार्य जीत लिए गए थे जिनको जितना महा कठिन था। मुसलमान यह सोचते हैं और कहते हैं कि काफ़िर हिन्दुओं ने अपना प्रभुत्व जमा लिया है।

और वास्तव में पतिल बोझा ने उनके सरों को फोड़ डाला जिन्होंने उनको ऊपर उठाने का तनिक भी प्रयास किया।

वास्तव में अप्राप्य वस्तुएं प्राप्त करलीं थीं। महान सम्राटों की भान्ति उसका नियन्त्रण करना और उससे लाभ उठाना आगे की बात है। मुझे भय है कि वहां हमारी योग्यता विफल हो जावेगी और हमारा कार्य नष्ट होजावेगा ये विजय केवल राज्य पर अधिकार प्राप्त कर लेने और राज्य करने तक ही सीमित

पीढ़ी से हमारे प्राचीनतम पूर्वजों ने किस प्रकार अपने इन विशेषणों से व्यक्त करने में आसक्ति और आदर अनुभव किया था आगे इसपर विचार करना अब निरर्थक ज्ञात होता है।

नहीं थी वरन इनमें वेदों और शास्त्रों की रक्षा, प्रभुत्त्व का स्थापित करना, और अपनी महत्ता-विजय और प्रशंसा का प्रकाशन आदि भी सम्मिलत हैं। इन सबको सुदृढ़ रखना पतिल बोझा तुम पर निर्भर है। यदि तुम ही में मतभेद हैं तो शत्रु फिर बढ़ जावेगा। अब मेरे दुष्कृत्य शान्त होगए हैं। वास्तव में वह महान था! अति उत्तम था! शत्रु हमें चारों ओर से घेरे हुए हैं। मैं बहुत बेचैन हूं। तुम्हारे पत्र ने मुझे कुछ साहस दिया है (१७६३ ई०)

—:o:o:—

— ५ —

हिंदू और हिन्दुस्थान शब्द के प्राचीनतम् वैदिक काल से अन्तिम हिंदू साम्राज्य की अवनति १८१८ ई० तक के इतिहास की पिछले अध्यायों में खोज करने के पश्चात हम इस परिणाम पर पहुंचे हैं कि हिंदुत्व की विशेषताओं का विवेचन कर सकें। हमारी खोज का प्रथम परिणाम उस निराधार सन्देह को दूर करना है जो कि हमारे सुव्यक्त किन्तु शीघ्रगामी देश वासियों के मन में बैठ गया है कि हिंदू और हिंदुस्तान शब्दों की उत्पत्ति मुसलमानों की ईर्षा से हुई है फिर भी जो कुछ गत अध्यायों में इन शब्दों के इतिहास के विषय में कहा गया है स्पष्ट है कि यह सन्देह कितना अतर्क और निर्मूल है और उसका उल्लेख करना ही उसका विरोध करना है। मोहम्मद के उत्पन्न होने से बहुत पूर्व, नहीं, बल्कि अरबों के एक राष्ट्र बनने से भी पूर्व यह पुराना राष्ट्र हममें तथा विदेशों में सिंधु या हिंदु नामों से विख्यात था और अरब इस नाम का आविष्कार तब तक नहीं कर सकते थे जबतक कि स्वयं सिंधु (Indus) का आविष्कार न कर देते उन्होंने उसे प्राचान ईरानियों, यहूदियों, और अन्य व्यक्तियों से ही सीखा था। किन्तु ऐतिहासिक घोर विरोध के अतिरिक्त भी क्या यह स्पष्ट नहीं है कि यदि यह हमारे शत्रुओं का घृणास्पद

शब्द होता जैसा कि कहा जाता है, तो क्या यह हमारी जाति के सर्वोच्च और वीर पुरुषों को प्रभावित करता ? वास्तव में हमारे पूर्वज अरबी या फारसी भाषाओं से इतने अनभिज्ञ नहीं थे। मुसलमान हमको काफिर भी कहकर पुकारते थे तो क्या हमारे पूर्वजों ने उस शब्द को भी अपना कर महत्व दिया है ? उन्होंने हिंदुस्तान और हिंदू नामों में ही क्यों राष्ट्रीय अपमान को इच्छा पूर्वक स्वीकार किया था ? केवल इसी लिए, कि वे हमारे कुछ व्यक्तियों से अधिक हमारी राष्ट्रीय परम्पराओं को जानते थे और हमारे राष्ट्रीय जीवन से कम अनभिज्ञ थे यही कारण है कि हममें से बहुत से इसी बात को दृढ़ता से दुहराते रहते हैं कि हिंदू शब्द संस्कृत भाषा में नहीं मिलता। केवल यही शब्द क्या ?—संस्कृत में बनारस, मराठा, गुजरात, पाटना, सिया, जमना और अनेक दैनिक प्रयोग के सहस्त्रों शब्दों का उल्लेख नहीं मिलता। तो क्या उनकी व्युत्पत्ति किसी विदेशी भाषा से लगाई जासकती है ? यद्यपि बनारस सँस्कृत भाषा में नहीं मिलता, तौ भी यह वराणसी का जो संस्कृत भाषा में मिलता है प्राकृत रूप होने के कारण हमारा ही शब्द है। वास्तव में यह आशा करना हासास्पद है कि प्राकृत भाषा का शब्द संस्कृत भाषा में मिले। इस से भी अधिक हिंदू शब्द यदि संस्कृत के शब्द का प्राकृत रूप है तो भी संस्कृत भाषा में मिलजाने की आशा नहीं रखनी चाहिए। फिर भी जैसा कि है, प्राकृत रूप में भी उसकी महत्ता का यह सारगर्भित प्रमाण हो सकता है कि वह रूप कभी संस्कृत साहित्य

में मिला होगा: उदाहरण स्वरूप मेसतंत्र में हिंदू शब्द का उल्लेख मिलता है। महाराष्ट्री आपटे और बंगाली तारानाथ तर्कवाचस्पति के समान संस्कृत के महान कोषकारों ने भी इसका उल्लेख किया है। "शिव शिव न हिंदुर्न यवनः"—सुविख्यात पंक्ति का उल्लेख करना भी उचित होगा।

यह हो सकता है कि मुसलमानों से प्रभावित वर्तमान फारसी में हमारे हिंदू शब्द के साथ कुछ घृणास्पद अर्थ लग गया है किन्तु उसके पास इसका क्या प्रमाण है कि हिन्दू शब्द का मूल भाव घृणास्पद था और उसका अर्थ "काला" था? हिंदी और हिंद फारसी में प्रयुक्त हुए हैं किन्तु उनका तात्पर्य काले से नहीं है और फिर हम जानते हैं कि 'हिंदु' के साथ उनकी उत्पत्ति संस्कृत के सिंधु या सिंध शब्द से हुई थी यदि हिंदु शब्द हमारा निर्देश करता है क्योंकि उसका अर्थ काला है तो यह भी सत्य होना चाहिए कि हिंदी और हिंद भी हमारा निर्देश करते हैं यद्यपि उनका अर्थ "एक काला आदमी" नहीं है? सत्य तो यह है कि हिंदू शब्द की उत्पत्ति मुसलमानों से प्रभावित फारसी से नहीं हुई है वरन् ईरान की प्राचीन भाषा जेंद से हुई है और उस समय सप्त सिंधु से सप्तसिंधुओं का ही निर्देश होता था। हमारे मूलरूप से काला होने के कारण इस से हमारा निर्देश नहीं किया होगा क्योंकि प्राचीन सप्तसिंधु यानी हिंदु अवस्था काल में ईरानियों की भांति गोरे थे और प्रायः उनके समान ही और उनके साथ भी रहा करते थे, बहुत काल के पश्चात ईसाई मत के प्रचार के समय पारथियन के निवासी हमारे सीमाप्रदेशों

को 'श्वेत भारत' कहा करते थे। अतएव हिंदू शब्द का मूल अर्थ "काला आदमी" नहीं रहा होगा।

वास्तव में पिछले प्रयत्नों से यह साधारणतया स्पष्ट कर देने के पश्चात् कि हिंदु और हिंदुस्तान मुसलमानों या उनसे प्रभावित फ़ारसी भाषा के नाम के सुने जाने से भी पूर्व हमारे देश और हमारे राष्ट्र के देश प्रेम और गौरव से पूर्ण नाम थे, जहां तक हिंदू की महानता और उसके प्रति हमारे अनुराग का सम्बन्ध है, यह कहना व्यर्थ होजाता है कि कुछ उन्मत्त और मन्द बुद्धि व्यक्तियों ने उसे घृणास्पद या आदर सूचक—कैसा नाम दिया था। एक समय था जब नारमण्डी के बिजेताओं की दृष्टि से इङ्गलैण्ड में भी "इङ्गलैण्ड" शब्द इतना निम्न समझा जाता था कि आपस ने उससे सोगंध खाने का प्रायः मुहावरा ही बन गया था, "मैं अंग्रेज़ होजाऊँ।" जो आत्म-अपमान का सबसे अधिक घृणित रूप था और नौरमन को "अंग्रेज़" कहना एक अक्षम्य अपमान समझा जाता था। तो क्या अंग्रेज़ों ने देश या राष्ट्र का नाम बदलने की ओर या इङ्गलैण्ड को नारमण्डी कहलाए जाने की ओर ध्यान दिया? और क्या उनका "अंग्रेज़" नाम का तिरस्कार उनको इतना महान बना सकता था? नहीं; इसके विपरीत, अपने प्राचीन रक्त और नाम न त्यागने के कारण हमें पता चलता है कि नौरमन शब्द तो केवल ऐतिहासिक अवशिष्ट ही रह गया और नौरमण्डी का नक्शे में कोई स्थान नहीं जबकि घृणित अंग्रेज़ और उसकी अंग्रेज़ी भाषा ने संसार का सबसे बड़ा

साम्राज्य अपना लिया है। और तिस पर भी अंग्रेजी कीर्तियां जो इतनी महान् समझी जाती हैं—साधारणतया हिन्दू संसार की कीर्तियों की समानता दिखाने के लिए उनके पास क्या है ?

युद्ध के दिनों में राष्ट्र अपने मस्तिष्क की स्वाभाविकता को खो बैठते हैं। और यदि पारसियों ने या अन्य लोगों ने हिंदु का अर्थ चोर या काला आदमी ही समझा था तो उनको यह भी स्मरण रखना चाहिए कि मुसलमान शब्द भी हिन्दुओं द्वारा सदैव घोर विद्वेषी लोगों का सूचक नहीं समझा जाता था। किसी को मुसलमान या मुसुन्डा कहना जंगली कहने से भी बुरा समझा जाता था। ऐसे कटु स्फूर्जन और आपसी दोषारोपण जो जीवन-मरण की लड़ाइयों में अनिवार्य थे जबकि क्रोधाग्नि से प्रज्वलित बर्बर मनोवृत्तियों की भड़कती ज्वाला की चरम सीमा पहुँची हुई थी। जैसे ही मनुष्य अपने उन्माद से मुक्त होकर मनुष्यता प्राप्त कर लेता है—एकदम भुला देने चाहिएँ। हमें यह भी नहीं भूल जाना चाहिए कि प्राचीन यहूदी हिंदु शब्द को शक्ति और साहस के लिए प्रयुक्त करते थे क्योंकि यह गुण हमारे देश और राष्ट्र से सम्बन्धित थे। एक अरबी वीरगाथा में जिसका नाम "सो हब मो अलाक्क" है, यह उल्लेख मिलता है कि हिन्दू तलवार के वार से भी अधिक कटु और भयानक सम्बन्धियों की विपत्तियां होती हैं; जबकि "हिन्दु-उत्तार देना" पारसीयों के कहावत मय कहने का ढंग है कि "भारतीय तलवार से गहरा और साहसी वार करो।" वैबीलोनियां के प्राचीन निवासी सब

से उत्तम कपड़े का गुण बतलाने के लिए 'सिंधु' का प्रयोग करते थे क्योंकि वह सप्तसिंधुओं से आता था—इस रीति से यह भी पता चलता है कि वे हमारे देश को प्राचीन नाम सिंधु से जानते थे। न हमने अब तक प्राचीन बैबीलोनियन भाषा में इसके राष्ट्रीय अर्थ के अतिरिक्त कोई और अर्थ देखा है।

कोई भी हिंदु प्रसिद्ध यात्री ह्यूनच्यांग की इस शब्द की विलक्षण व्याख्या पर गौरव प्राप्त किए न रह सकेगा, जिस में वह हमारे राष्ट्रीय नाम हिंदु का संस्कृत के 'इंदु' से निरूपण करता है; और पुष्टि में कहता है कि संसार ने इस राष्ट्र को "हिंदुओं" उचित ही रूप से कहा है क्योंकि वे और उनकी सभ्यता चन्द्रमा की भान्ति निर्मल और श्रान्त मानव आत्माओं के लिए आनन्द और विनोद के उद्गम रहे हैं। क्या इस सबसे स्पष्ट नहीं है कि मनुष्यों के मनमें इस शब्द के प्रति श्रद्धा उत्पन्न करने की विधि उसे अस्वीकार करने या न मानने के लिए नहीं वरन् उसे अपनी सेनानी शक्ति, उद्देश्यों की पवित्रता और अपनी आत्माओं की उच्चता से स्वीकार करने और उसका आदर करने के लिए है। यदि हम अपने कुछ भाईयों को आनन्द में अपने हवाई घोड़ों पर सैर करने और उनको प्रजा-जन-संख्या में "आर्य" लिखे जाने की भी आज्ञा देदें तो वे आर्य शब्द को अपनी स्थिति तक लेजाने में ही सिद्ध हो सकते हैं और 'कूली' या 'दास' जैसे शब्दों का एक और पर्यापवाची बढ़ाने की आज्ञा तभी तक देसकते हैं जबतक कि हमारा राष्ट्र उन्नति के शिखर

पर नहीं पहुंच जाता और वह प्राचीन काल की शक्ति को नहीं पालेता।

किन्तु हिंदू या हिंदूधर्म शब्दों को त्यागने के निरर्थक प्रस्ताव के विपक्ष में किसी विचारणीय तर्क के अतिरिक्त, और थोड़ी देर के लिए इस निर्मूल सिद्धान्त को मान लेने पर भी कि हमारे शब्दों की व्युत्पत्ति विदेशियों से हुई है, हम केवल यही पूछते हैं कि क्या उनको त्यागना और अपने राष्ट्र को सूचित करने के लिए किसी नवीन शब्द की घड़ना करना सम्भव है? वर्तमान प्रचलित भाव के अनुसार 'हिंदू' हमारी जाति का प्रतीक होगया है और एक महान रूप होगया है जो अन्य सब से अधिक अटक से कटक तक और कुमारी अन्तरीप से काश्मीर तक हमारी जाति-एकता का पोषक है। क्या तुम यह समझते हो कि उसे एक टोपी को भान्ति बदल देंगे? एक बार ऐसा हुआ कि एक सज्जन ने जो बहुत देश भक्त और सभ्य थे, जनसंख्या में हिंदू के बजाए आर्य लिखाने का निश्चय किया क्योंकि उसने एक महान असत्य पर विश्वास कर लिया था कि पारसी और मुसलमान हमें घृणा से हिंदू कहते थे जिसका अर्थ चोर या काला आदमी था। तो भी समयाभाव के कारण मैं उससे इस नाम की उत्पत्ति के विषय में विस्तृत वाद विवाद न कर सका और उससे प्रश्न किया कि उसका क्या नाम था, उसने कहा 'तक्तसिंह' 'मेरे प्यारे मित्र' मैंने कहा, "हिंदू शब्द के विपरीत जिसकी उत्पत्ति पर इतना विवाद है तुम्हारा नाम निर्विवाद एक वर्णसंकर है अतएव पहिले उसे किसी शुद्ध आर्यनाम-मौदूनलायन या

सिंहासनसिंह आदि से परिवर्तित करो। कुछ देर तक बात को टालते हुए उसने कहा कि ऐसा करना बहुत कठिन है क्योंकि उससे उसकी आर्थिक स्थिति बिल्कुल उलट जायेगी और फिर वह किस प्रकार संसार को अपने नवीन नाम से पुकारने के लिए बाध्य करेगा और उसे अपने नवीन नाम "सिंहासन सिंह" से पुकारे जाने में क्या लाभ जब कि सब उसे "तक्तसिंह" कहने में दृढ़ हों "किन्तु," मैंने आनन्दित होकर जवाब दिया यदि तुमको अपना व्यक्तिगत नाम बदलना इतना कठिन और हानिप्रद प्रतीत होता है जो कि विदेशी हैं, तो मेरे मित्र, सम्पूर्ण जाति का वह नाम बदलना कितना दुष्कर होगा जो विदेशीपन से नितान्त दूर है और जो वेदों के समान ही हमारी सम्पत्ति हैं:—और यह कितना निरर्थक होगा? इस प्रकार के किसी व्यापक नाम को बदलने के प्रयत्न की निरर्थकता इससे भी अधिक पंजाब में हमारे सिक्ख भ्रातृत्त्व से मिलती है। हिंदूजाति के सबसे महान वीर और श्रेष्ठ पुरुषों का वह दल जिसे हमारे महान गुरू ने "नीलवस्त्र के कपडे काडे तुरकपाणी अमल गया!" विजयी शब्दों में गाकर "धर्म चलावन संत उबारण, दुष्ट दैत्य के मूल उपाटण, काज धरा में जनम। समज लेहु साधुसम मननन्। (परित्राणाय साधूना विनाशायच दुष्कृताम्। धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगेयुगे) के उद्देश्य से स्थापित किया था वह योद्धाओं का दल "खालसा" कहलाया! वह संत जिसने रोते हुए कहा था "क्षत्रियांहि धर्म छोडिया म्लेच्छ भाषा गहि। सृष्टि सब इकबर्ण हुए धर्म की गति रहो।" अब प्रति दिन

"वाह गुरुजी की फते। वाह गुरुजी का खालसा"—से उनका अभिवादन होता है। दरबार, दिवाण बहादुर आदि शब्द हमारे महरिमन्दिरों के हृदयों में चोर की भान्ति घुस गए हैं। वे हमारे घावों के चिन्ह हैं। घाव भर गए हैं। किन्तु चिह्न बने हैं और हमारी प्रकृति में मिल गए हैं। उनको साफ़ करने के प्रयत्न जब तक हमें लाभ के अतिरक्त अधिक हानि पहुंचाने का भय उत्पन्न करते हैं तब हम उन्हें सह ही लेते हैं। क्यों कि फिर भी, वे उन घावों के चिह्न हैं जो उन लड़ाईयों में हुए थे जिनको हमने कीर्ति के क्षेत्र में जीता था और जिनमें हम उस समय के विजेता घोषित हुए थे।

और तो भी, यदि कुछ शब्द चाहे वे कितनी ही घनिष्ठता से पवित्र वस्तुओं से सम्बन्धित हों त्याग देने चाहिएं, और बदल देने चाहिएं, वे यही हैं क्यों कि वे सब निर्विवाद विदेशी हैं और विदेशी शासन के स्मार्क हैं। क्या यह प्राय: असत्य नहीं है कि हम उन्हें न केवल स्वीकार ही कर सके हैं वरन् उनको त्यागने की घोषणा करें, हिंदु हिंदुस्तान हमारी जाति का और हमारे देश का प्रारम्भिक नाम है जिसे हमारे पूर्वजों ने रक्खा था और जिनका उल्लेख संसार के प्राचीनतम् और प्रतिष्ठित इतिहास-वेदों में मिलता है?—यह वह नाम है जिसको यदि अधिक भी नहीं तो कम से कम चालीस शताब्दियों से सिन्धु के दोनों ओर विस्तृत हमारे देश वासियों ने गौरव से अपनाया है। जिसका विकास काश्मीर से कुमारी और अटक से कटक

तक हुआ था जिसने समस्त देश का आलिंगन किया था; जो केवल एक शब्द ही में हमारी जाति को तथा हमारे देश सिंधु या हिंदु की सम्पूर्ण स्थिति को व्यक्त करता है; और जो "राष्ट्रमार्यस्य चोत्तमम्" की निर्मलता दर्शाने के लिए स्वीकृत हुआ है। यह वह विशेषण है जिसके द्वारा हमारे शत्रु हमसे घृणा करते थे। और जिसके लिए शालिवाहन से शिवाजी तक हमारे लिए सहस्रों शताब्दियों तक लड़ते रहे हैं।

यही हिंदु शब्द था जो पद्मिनी और चित्तौड़ की राख में खुदा हुआ मिला था। वह यही हिंदु शब्द था जिसे तुलसीदास, तुकाराम, रामकृष्ण और रामदास ने अपनाया था; हिंदु पद पादशाही रामदास, का स्वप्न था, शिवाजी का उद्देश्य था, बाजीराव और बन्दा बहादुर, छत्रसाल और नानासाहब, प्रताप और प्रतापादित्य की महत्त्वाकांक्षाओं का ध्रुवतारा था। यह उसी ध्वजा पर अंकित था जिसकी रक्षा के लिए पानीपत के युद्ध में सैकड़ों सहस्र हिंदू-वीर शत्रुओं पर विनाशक आघात करते हुए एक ही दिन में मर गए थे—भाऊ उनका नायक हाथ में तलवार लिए हुए काम आया था। यह हिंदू पद पादशाही ही थी कि जिस के लिए इतने प्राणोत्सर्ग के होते हुए भी और जिसके गुणों के कारण नाना और महादाजी राष्ट्र नौका को चट्टानों और छिछले जल से सुरक्षित रखते हुए इच्छित तट के निकट ले आये थे। वह यही विशेषण हिंदु या हिंदुस्थान है जो आज नेपाल की राजगद्दी से सड़क के मांगते हुए प्याले तक—हमारे

करोड़ों व्यक्तियों के अनुराग और श्रद्धा का पात्र है। इन शब्दों का परित्याग हमारे राष्ट्र के हृदयों को टूक टूक कर फेंक देना है। ऐसा करने से पहिले ही हमारी मृत्यु होजावेगी। यह न केवल घातक ही है वरन् निरर्थक भी है। हिंदु और हिंदुस्थान को अपनी स्थिति से हटाना हिमालय पर्वतों को उनके स्थान से ही उठाना होगा। इसे महान भूचाल के अतिरिक्त जो भयानक शक्ति और अज्ञात बाधाओं से युक्त आया हो कोई भी नहीं करसकता। विदेशी भाषाओं से उत्पन्न होने की असत्य धारणा के कारण हिंदु और हिंदुस्थान विशेषणों के निर्मूल किए हुए आक्षेप को यदि ऐसा ही छोड़ दिया जाता तो वह अवश्य ही अनावश्यक ऐतिहासिक प्रमाणों का प्रचार कर उसकी महान् अवनति कर देता। किन्तु जैसा कुछ भी है, वह आक्षेप एक गुप्त भय से पोषित होता है कि यदि यह विशेषण अपनाया गया और इसका सम्मान किया तो जो भी ऐसा करेंगे वे "हिन्दूधर्म" में प्रचलित धार्मिक क्रियाएँ और सिद्धान्तों के मानने वाले समझे जावेंगे। यह भय, यद्यपि खुले तौर पर प्रदर्शित नहीं किया जाता, कि हिंदू हिंदूधर्म को मानने वाला है—विशेषतया इस बात से कि वह हिंदू है, अनेक व्यक्तियों को यह मानने से रोकता है कि वह विशेषण विदेशियों (शत्रुओं) का अन्वेषण नहीं है। यह भय पूर्णतया अनुचित नहीं है। किन्तु वे जो एसा भय रखते हैं यदि स्पष्टतया इसे हिन्दू न कहलाए जाने का खुले तौर पर कारण बतलावें तो अधिक अच्छा होगा न कि उसे किसी असत्य और अप्रमाणित बातों से छिपाना। इन दो शब्दों—हिंदुत्त्व और हिंदू

धर्म की वाह्य समानता ही इस घृणित विरोध की उत्तरदायी है, जिसने कभी २ हमारी हिंदू भ्रातृत्व की एकता नष्ट की है। इन दोनों शब्दों का अन्तर स्पष्टतया शीघ्र ही व्यक्त किया जावेगा। यहां पर यही कहना पर्याप्त होगा कि यदि कोई शब्द वास्तव में परदेशी व्युत्पत्ति का हो तो वह यही "हिंदूधर्म" है। अतएव हमें अपने विचारों को इसकी नवीनता में नहीं उलझा देना चाहिए। वेदों को न मानने वाला व्यक्ति भी कट्टर हिन्दू होसकता है। क्योंकि एक धर्मिक स्वतन्त्र प्रमाण उल्लेख करता है कि हमारे सहस्रों जैन भाई औरों को क्या बात—अपने को अनेकों वंशों से हिंदु कहते चले आए हैं और आज भी किसी अन्य नाम से पुकारे जाने पर उनके हृदय को आघात पहुँचता है। हम इसका साधारणतया ही उल्लेख करते हैं—क्योंकि यह सत्य बात है। इसके अतिरिक्त विस्तृत व्याख्या और परीक्षा का विवेचन अब होगा। तब तक हम आशा करते हैं कि हमारे पाठक हमारे तर्क के अन्त के विषय में किसी प्रकार का द्वेष भाव नहीं रक्खेंगे—उसको अन्तर महत्ता को स्थिर रखने और समझने के लिए हमने विगत अध्यायों में किसी "धर्म" (ism) से नहीं वरन् हिन्दुत्त्व का राष्ट्रीय और सांस्कृतिक दृष्टि से ही उल्लेख किया है।

अब हम ऐसी उपयुक्त स्थिति में हैं कि मानव भाषा की विस्तृत और भ्रमात्मक संयोगावस्था के विषयों का विश्लेषण कर सकें। हिंदुत्व हिंदु का व्युत्पन्न शब्द है। हमने जान लिया है कि हमारी जाति के प्राचीनतम् और पवित्रतम् प्रमाणों से सिद्ध है कि सप्तसिंधु या हप्तसिंधु उस प्रदेश का नाम था

जिसमें वैदिक राष्ट्र सम्पन्न हुआ था। यह भौगोलिक विचार यद्यपि प्राथमिक ही है जो कभी बढ़ता है कभी कम होता है, किन्तु सदैव दृढ़ता से हिंदु और हिंदुस्थान शब्दों से सम्बन्धित रहा है। और अब पांच हज़ार वर्ष पश्चात् हिंदुस्थान समस्त महाद्वीप का सिंधु से सिंधु यानि सिंधु नदी से सागरों तक निर्देशक होगया है। राष्ट्र की शक्ति, एकता की भावना और संयोग को दृढ़ करने वाले कारणों में सबसे मुख्य कारण भीतर से एक सुसम्बन्धित और बाहर से स्पष्ट सीमावाली "प्रादेशिक आबादी" तथा ऐसे "नाम" का अपनाना था जो उच्चारण मात्र से ही मातृभूमि के मनचाहे प्रतिरूप और विगत की आनन्दयुक्त स्मृतियों का दिग्दर्शन करा सके। राष्ट्र को संयुक्त और शक्तिशाली बनाने की इन दोनों मुख्य आवश्यकताओं का हमें उत्तम बरदान मिला है। हमारा देश इतना विस्तृत होने पर भी इतना सुगठित है, इतना स्पष्ट सीमायुक्त होने पर भी इतनी दृढ़ता से रक्षित है कि संसार के किसी भी देश को "भौगोलिक एकांग" की भांति प्रकृति ने अपनी उगंलियों से इतनी स्पष्टतया नहीं दर्शाया—जिसकी आलोचना नहीं होसकती, जिसका अपवाद नहीं होसकता। इसी प्रकार, हिंदुस्थान या हिंदु नाम है जिसे उसने अपनालिया है। हमारे मन में वह जिस स्वरूप का निर्णय करता है वह निश्चय ही हमारी मातृभूमि का है और भौगोलिक व भौतिक आकृतियों को सूचित करते हुए उसे जीवित स्वरूप प्रदान करता है। हिंदुस्थान जिसका तात्पर्य "हिंदुओं का देश" है, हिंदुत्त्व की सर्वप्रथम विशेषता निश्चय ही भौगोलिक होनी चाहिए। हिंदू मुख्यतः हिंदुस्तान का या तो

स्वयं ही या अपने पूर्वजों के द्वारा एक नागरिक है और वह इस देश को अपनी मातृभूमि मानता है। अमरीका में और फ्रांस में भी हिंदू शब्द से भारतीय का भाव लिया जाता है जिसमें संस्कृति या धर्म का कोई भाव नहीं रहता। और यदि हिन्दू शब्द से केवल यही मुख्य भाव प्रदर्शित किया जाता जो उसने अन्य शब्दों के साथ साथ समान्यतः सिंधु शब्द से किया है तो उससे केवल एक भारतीय का भाव ही सूचित होता—अर्थात 'हिंदुस्तान का एक निवासी,' जैसा कि हिंदी शब्द व्यक्त करता है।

परन्तु हमने अब तक अपनी सम्पूर्ण खोज में केवल इसी पर बिचार किया है कि क्या होचुका है अथवा क्या होना चाहिए इसलिए नहीं कि जो होना चाहिए उसका उल्लेख न्यायसंगत नहीं है; नहीं, यह आवश्यक भी है और कभी कभी अधिकाधिक शक्ति देने वाला होता है, किन्तु वह भी जो वास्तव में वर्तमान है उसका ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् ही भली प्रकार किया जासकता है। अतएव हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि हिंदुत्त्व की विशेषताओं को निर्धारित करने के लिए हम पूर्णतया उस शब्द के इस काल के प्रचलिव भाव का ही आश्रय लें। इसलिए, यद्यपि हिंदू शब्द का मूलार्थ हिंदी शब्द की भान्ति केवल भारतीय को ही सूचित कर सकता है, तौ भी जैसा कि होरहा है—हम इस शब्द के प्रयोग को अधिक दबाने से डरते हैं, यदि हम किसी मुसलमान को हिंदुस्तान में रहने के कारण हिंदू कहें। यह होसकता है कि कभी भविष्य में हिंदू शब्द केवल

हिंदुस्थान के निवासियों का ही बोध करे; किन्तु वह दिन तभी आ सकता है जबकि समस्त संस्कृति की धार्मिक कट्टरता अपनी सम्पूर्ण शक्तियों को एकत्रित करके अहंभाव का नाश करदे और धर्म "वाद" होने रुक जाएँ और केवल सनातन सिद्धान्तों का एक सामान्य कोष बन जाएँ जो कि उस मानव साम्राज्य के शाही और सुदृढ़ आधार हैं। किन्तु इस लक्ष्य को प्राप्त करने की प्रथम रेखाएँ भी जिसे हम इतना अधिक चाहते हैं–क्षितिज पर कठिनता से ही खिंच सकती हैं। नितान्त वास्तविकताओं की अवहेलना करना भी महामूर्खता होगी। जब तक कि अन्य धर्म (Ism) अपने विशेष सिद्धान्तों को न त्याग दें जिनसे कि बिनाशक वाद विवाद उत्पन्न होते हैं, तब तक कोई भी सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय एकता अपने प्रतिबन्धों को ढीला नहीं कर सकती और विशेषकर सार्वजनिक ध्वजा और नाम को जो कि शक्ति और संयोग के महान् उद्गम हैं। अमरीका निवासी भी भारत का नागरिक हो सकता है। यदि स्वीकृत होगया तो वह अवश्य ही हमारे भारतीय या हिंदी की भान्ति समझा जायगा, वह हमारा ही देशवासी और नागरिक होगा। किन्तु जब तक, हमारे देश के साथ साथ उसने हमारी संस्कृति और इतिहास को न अपनाया हो, हमारे रक्त को को न पाया हो और हमारे देश को न केवल अपने प्रेम का देश ही वरन् पूजा का देश न स्वीकार किया हो, वह अपने आप को हिंदू संस्था में सम्मिलित नहीं कर सकता। यद्यपि हिंदुत्व की प्रथम आवश्यकता यही है कि वह स्वयं ही या पूर्वजों के द्वारा हिंदुस्थान का नागरिक

हो तो भी केवल यही एक आवश्यकता नहीं हैं। क्योंकि हिंदु शब्द अपने भौगोलिक भाव से कहीं अधिक भाव व्यक्त करता है।

वह कारण जो यह व्यक्त करता है कि हिंदु शब्द भारतीय या हिंदों का पर्यायवाची नहीं हो सकता और केवल यही भारतीय को सूचित नहीं कर सकता, स्वभावतः हमें दूसरी आवश्यक विशेषता का परिचय देता है। हिंदु केवल भारतीय राज्य के नागरिक ही नहीं हैं क्योंकि वे केवल मातृभूमि के प्रति प्रेम ही नहीं रखते वरन् उनमें एक सामान्य रक्त वर्तमान है। वे केवल राष्ट्र ही नहीं हैं वरन् जाति भी हैं। 'जा' धातु से उत्पन्न जाति शब्द जिनका अर्थ 'उत्पन्न करना' है भ्रातृत्त्व का भाव दर्शाता है वह जाति जो एक ही उद्गम से उत्पन्न हुई है और जिन में एक एक ही रक्त बहता है। सम्पूर्ण हिंदुओं की नसों में उस महान जाति का रक्त बहता है जो हमारे वैदिक पूर्वज-सिंधुओं से उत्पन्न हुई थी और उससे सम्बन्धित थी। हमें उस अत्यन्त मनोरंजक आक्षेप का पूर्ण ध्यान है जो उत्तेजित शब्दों में पूछता है "क्या तुम सचमुच में एक जाति हो? क्या तुम एक सामान्य रक्त के धारण करने वाले कहे जासकते हो?" हम भी प्रश्न का उत्तर प्रश्न से ही देसकते हैं, क्या अंग्रेज कोई जाति हैं? क्या अंग्रेजी रक्त, फ्रेंच या जर्मन रक्त या चीनी रक्त जैसी कोई वस्तु इस संसार में है? क्या वे, जोकि अपनी जाति में विदेशी रक्त को विवाह द्वारा स्वतंत्रता से मिला रहे हैं, एक रक्त वाले और स्वयं एक जाति कहला सकते हैं? यदि वे कहला सकते हैं, तो हिंदु भी

निश्चय ही कहला सकते हैं। क्योंकि स्वयं जातियां जिनको तुम्हें उचित दृष्टिकोण से देखने और समझने में भारी असफलता मिली है, हमारे वंश में सामान्य रक्त के स्वतन्त्र प्रवाह को रोकती हैं और उन्होंने हमारे रक्त से कहीं अधिक विदेशी रक्त को रोका था। नहीं, क्या वर्तमान समय की प्रचलित जातियां ब्राह्मण से चाण्डाल तक के एक सामन्य रक्त का प्रमाण नहीं देतीं? स्मृति के ऊपर सरसरी दृष्टि डालने से ही परिणाम स्वरूप ज्ञात होजायेगा कि अनुलोम और प्रतिलोम की वैवाहिक सँस्थाएँ खूब प्रचलित थीं जिन्होंने हमारी अधिकांश जातियों को उत्पन्न किया था। यदि किसी क्षत्रिय का शूद्र स्त्री से कोई पुत्र है तो उसकी जाति उग्र होगी। और क्षत्रिय की उग्रा स्त्री की सन्तान श्वपच जाति का निर्माण करती है। ब्राह्मण माता और शूद्र पिता से चाण्डाल उत्पन्न होता है। सत्यकाम, जाबाली की वैदिक कहानियों से महादजी शिंदे तक—हमारे इतिहास का प्रत्येक पृष्ठ बतलाता है कि हमारे रक्त की प्राचीन गंगा पवित्र वैदिक शिखरों से निकल कर हमारे वर्तमान इतिहास के क्षेत्र में उसे उपजाऊ बनाते हुए और अनेक पवित्र नदियों को मिलाते हुए और अनेक दूषित आत्माओं को पवित्र करते हुए बड़े विस्तार, गहराई और वेग से बहती है जिससे रेत और दलदल में न समा जावे और आज भी आनन्दमय नव जीवन प्रदान करती हुई सतत् बह रही है। वर्ण व्यवस्था का कार्य विश्वस्त रीति के अनुसार उत्तम बहाव को नियमित रूप से चलाना था जो रीति

वास्तव में उचित ही थी—और जिसे हमारे संत और देश प्रेमी न्यायकारों ने और सम्राटों ने उजाड़ और हीन देश को उपजाऊ और धनन्य बनाने के लिए समुन्नत और उत्तम उपादेय वस्तुओं की रक्षा करते हुए निर्मित किया था ।

यह उन वर्णों के विषय में ही सत्य नहीं है जो हमारे मुख्य चार वर्णों में अन्तर्विवाह से उत्पन्न हुए हैं या इन प्रधान चार वर्णों और वर्णसंकर जातियों के मेल से उत्पन्न हुई हैं किन्तु उन सामूहिक व्यक्तियों और जातियों के विषय में भी सत्य है जो विगत काल के अन्धकार में कहीं एकान्त और आत्म-केन्द्रित जीवन व्यतीत करते थे। मालाबार या नेपाल में प्रचलित रीति-रस्म को देखो जहां सबसे उच्च वर्ण का हिन्दू उन व्यक्तियों की लड़की से विवाह कर सकता है जो प्रारम्भिक सामान्य समूह के व्यक्ति समझे जाते थे, किन्तु जो यदि यह सत्य भी हो तो हिन्दू संस्कृति की साहस, अनुराग और वीरता से रक्षा करने के कारण हमसे सामान्य रक्त के दृढ़ सूत्रों से बंध गए हैं। क्या नागवंश द्राविड़ कुटुम्ब है ? अच्छा तो अब कौन कौन रह गया है जब कि अग्निवंश के युवकों ने नागो की पुत्रियों को ग्रहण करलिया है और चन्द्रवंश व सूर्यवंश ने आपस में अपने युवकों को अपनी कुमारियां दे दी हैं ? हर्ष के समय तक—बौद्ध मत की शताब्दियों को छोड़ कर जिनमें वर्ण व्यवस्था कुछ कुछ नष्ट होगई थी—अन्तर्विवाहों का खूब प्रचार था। पाण्डवों के एक मात्र कुल का ही उदाहरण लेसकते हैं। सन्यासी पराशर

ब्राह्मण थे। वे मछिहारे की सुन्दर पुत्री पर आसक्त होगए थे। जिनसे संसार प्रसिद्ध व्यास का जन्म हुआ था, जिन्होंने क्षत्रिय राजकुमारी अंबा और अंबालिका से दो पुत्र उत्पन्न किए थे, उन में से एक पुत्र पांडु ने अपनी स्त्रियों को नियोग द्वारा सन्तान उत्पन्न करने की आज्ञा दी थी जिन्होंने अज्ञात वर्ण के पुरुषों से प्रेम करके हमारी वीरगाथा के महान नायकों को जन्म दिया था। इन्हीं के समान प्रसिद्ध चरित्र कर्ण, बभ्रुवाहन, घटोत्कच, विदुर और अनेकों का उल्लेख न करते हुए हम सामान्यतः वर्तमान उदाहरणों का ही उल्लेख करते हैं—कहा जाता है कि चन्द्रगुप्त ने ब्राह्मण पुत्री से विवाह करके अशोक के पिता को जन्म दिया था—अशोक ने राजकुमार होते हुए भी वैश्य सुन्दरी से विवाह किया था: हर्ष ने वैश्य होते हुए अपनी पुत्री का क्षत्रिय राजकुमार से विवाह किया था; व्याधकर्मा जो व्याध का पुत्र था जिससे उसकी ब्राह्मण मां प्रेम करने लगी थी और जो विक्रमादित्य, सूरदास, कृष्णाभट्ट के यज्ञाचार्य होगए थे जो ब्राह्मण होते भी चाण्डाल युवतियों पर आसक्त होगए थे कि उसके साथ स्वतन्त्र वैवाहिक जीवन व्यतीत करने लगे थे और अन्त में उन्होंने "मातंगी पंथ" की स्थापना की थी; जो अपने आपको हिन्दू कहते हैं और वास्तव से वे हिंदु कहलाने में पूर्णतया उचित भी हैं। यहीं पर अन्त नहीं है। कभी कभी कोई भी व्यक्ति अपने अथवा अपनी पत्नि के दृढ़ कार्यों के कारण अपने वर्ण को त्याग कर दूसरा वर्ण अपना सकता है:—"शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति

शूद्रताम् ।" "न कुलं कुलमित्याहुराचारं कुलमुच्यते । आचार कुशलो राजन् इह चामुत्र नंदते ॥ उपासते येन पूर्वां द्विजा संध्यां न पश्चिमां । सर्वास्तान् धार्मिको राजा शूद्रकर्मणि योजयेत् ॥"—का आदेश सर्वदा ही भयावह नहीं था। बहुत से क्षत्रियों ने कृषि तथा जीवन के अन्य व्यापारों में पड़कर क्षत्रियोचित प्रतिष्ठा को खो दिया था और वे अन्य वर्गों में सम्मिलित कर लिए गए थे। जबकि अनेक वीर पुरुषों ने और कभी कभी समस्त वर्गों (Tribes) ने क्षत्रियों का स्थान और अधिकार प्राप्त कर लिया था और ऐसे समझे भी जाने लगे थे। एक वर्ण से निकाल दिए जाने पर जो कि प्रति दिन होने वाली साधारण घटना है दूसरे वर्ण से सम्बन्ध स्थापित करना ही है।

यह न केवल उन हिंदुओं के विषय में सत्य है जो वैदिक आदेशों पर निर्भर वर्ण-व्यवस्था को मानते हैं वरन् हिंदू व्यक्तियों के अवैदिक पंथों के विषय में भी पूर्णतया सत्य है। जैसा कि बौद्ध काल में एक कुटुम्ब में बौद्ध पिता, वैदिक माता और जैन पुत्र का होना सम्भव था वैसा ही अब भी सम्भव है। गुजरात में जैन और वैष्णव अन्तर्विवाह करते हैं। सिक्ख और सनातनी पंजाब व सिंध में। इसके अतिरिक्त, आयदिन का मानभाव या लिंगायत या सिक्ख या सनातनी कल का हिंदू हो है और आज का हिंदू कलका लिंगायत या ब्राह्मो या सिक्ख हो सकता है।

हिंदु शब्द के समान हमारे व्यक्तियों की जातीय एकता को

कोई भी अन्य शब्द पूर्णतया व्यक्त नहीं कर सकता। हम में से कुछ आर्य थे और कुछ अनार्य; अर्थात आयर या नायर —हम सब हिंदू ही थे और हमारा रक्त भी एक ही था। हम में से कुछ ब्राह्मण हैं, कुछ नाम शूद्र या पंचम हैं; क्या ब्राह्मण क्या चाण्डाल हम सब हिंदू ही हैं और हमारा रक्त भी एक ही है। हम में से कुछ दक्षिणात्य हैं और कुछ गौड़ हैं, किन्तु गौड़ या सारस्वत हम हम सब हिंदू ही हैं और हमारा रक्त भी एक है। हममें से कुछ राक्षस थे और कुछ यक्ष थे—किन्तु राक्षस या यक्ष हम सब हिंदु ही है और हमारा रक्त भी एक ही है। हममें से कुछ बानर थे, कुछ किन्नर थे किन्तु बानर या नर हम सब हिंदु ही हैं और हमारा रक्त भी एक है। हममें से कुछ जैन हैं और कुछ जंगम; किन्तु जैन या जंगम सब हिंदु ही हैं और हमारा रक्त भी एक ही है। हममें से कुछ वेदान्ती हैं और कुछ विश्व देवता वादी हैं, कुछ आस्तिक हैं और कुछ नास्तिक हैं, किन्तु अद्वैत वादी या नास्तिक—हम सब हिंदु ही हैं और हमारा रक्त भी एक ही है। हम केवल राष्ट्र ही नहीं हैं वरन एक जाति हैं, एक जन्मान्त भ्रातृत्त्व हैं। इससे अधिक किसी का महत्त्व नहीं है क्योंकि अन्ततः यह हृदय का प्रश्न है। हम इस बात को खूब समझते हैं कि राम, और कृष्ण, बुद्ध और महावीर, नानक और चैतन्य बसव और माधव, रोहिदास और तिरुवेल्लवर की धमनियों में प्रवाहित होने वाला वही रक्त हमारे हिंदू राज्य की नस नस में दौड़ रहा है और एक एक हृदय में प्रकम्पन्न उत्पन्न कर रहा है। हम समझते हैं कि हम एक जाति हैं—वह जाति जो

रक्त के सुदृढ़ बन्धनों से जकड़ी हुई है—अतएव उसे ऐसा होना भी चाहिए था।

वैसे तो जहां तक मनुष्य का सम्बन्ध है; इस समस्त संसार में एक ही जाति है—मानव जाति; जो एक ही रक्त—मानव रक्त से जीवित रहती है। अन्य सब बातें अधिकतर सामयिक, बात टालने के लिए और प्रायः सम्बन्धित रूप से सत्य हैं। प्रकृति जाति—जाति के बीच की कृत्रिम रुकावटों को उखाड़ फेंकने का सतत् प्रयत्न कर रही है। रक्त के सम्मिश्रण को रोकना बालू पर महल खड़ा करना है। समस्त उपदेशकों के सम्पूर्ण आदेशों से अधिक शक्तिशाली स्त्री-पुरुषों का परस्पर आकर्ष (Sexual attraction) सिद्ध हुआ है। फिर भी जैसा कि उपलब्ध है, अन्डमन द्वीपों के आर्य निवासी भी इधर उधर फैले हुए आर्यों के रक्त से रहित हैं—सच तो यह है कि हम में से कोई भी यह कह सकता है, जहां तक इतिहास उसे कहने का अधिकार देता है कि उसकी धमनियो में सम्पूर्ण मानव जाति का रक्त बहता है। एक ध्रुव से दूसरे ध्रुव तक मनुष्य की प्राथमिक एकता सत्य है और अन्य सब संबन्ध-भाव ही से सत्य हैं।

केवल सम्वन्ध बिचार से ही संसार में कोई भी व्यक्ति हिन्दुओं और शायद यहूदियों के समान जातीय एकांग का अधिकार सिद्ध नहीं कर सकता। हिन्दू हिन्दू-स्त्री से विवाह करने पर वर्ण का त्याग कर सकता है किन्तु हिंदुत्त्व का नहीं

वह हिंदू जो किसी सैद्धान्तिक अथवा दार्शनिक या सामाजिक पद्धति को मानता है, धर्म परायण हो या धर्म विरुद्ध हो, किन्तु किसी हिंदू द्वारा निर्विवाद स्थापित किया हुआ हो तो अपने वर्ण को खो सकता है मगर हिंदुत्त्व को नहीं:—अपने हिंदूपन को—क्योंकि उसकी सबसे बड़ी विशेषता हिंदू रक्त की पैतृक सम्पत्ति है अतएव वे सब जो सिंधु से सिंधु (Indus to seas) तक के विस्तृत देश को पितृभूमि मानते हैं और उस जाति के रक्त को पैतृक सम्पत्ति के रूप में पाते हैं जिसका सम्मिश्रण से विकास हुआ है हिंदुत्त्व की अत्यन्त आवश्यक विशेषताओं के धारण करने वाले कहे जा सकते हैं।

केवल दो ही क्योंकि इस क्षणिक विचार से पता चलेगा कि एक राष्ट्र और एक जाति के—एक ही पितृभूमि और एक ही सामान्य रक्त के ये दोनों गुण हिंदुत्व की समस्त विशेषताओं को समाप्त नहीं कर सकते। भारतीय मुसलमानों में से यदि उनकी अज्ञानता से उत्पन्न हुई ईर्ष्या को अधिकांश दूर कर दिया जावे तो हमारे देश को पितृभूमि की भांति प्यार करने लगेंगे, जैसा कि उनमें से उत्तम विचार वाले और देश भक्त सदैव करते रहे हैं। उनके धर्म-परिवर्तन की कहानी जो करोड़ों सम्बन्धों में बर्बरता से पूर्ण है हाल की ही होने के कारण यदि वे चाहें तो भी भुलाई नहीं जा सकती। क्योंकि उनकी धमनियों में हिन्दुओं का रक्त ही बहता है। किन्तु क्या हम, जो कि यहां पर वास्तविक बातों की खोज कर रहे हैं—जैसी कि वे हैं न कि जैसी होनी

चाहिए इन मुसलमानों को हिंदू स्वीकार कर सकने हैं ? काश्मीर तथा भारत के अन्य भागों की अनेक मुसलमान जातियां और दक्षिणी भारत में इसाई भी हमारी जाति के नियमों को यहां तक मानते हैं कि साधारणतया वे अपनी जाति में ही अपने विवाह करते हैं, तो भी यह स्पष्ट है कि यद्यपि उनका मूल-हिंदू-रक्त मिलावट से प्रायः अप्रभावित ही है, तिस पर भी वे उसी भाव से हिंदू नहीं कहला सकते जो इस नाम से व्यक्त है। क्योंकि हम हिंदू आपस में न केवल पितृभूमि के प्रति प्रेम के बन्धनों से ही बन्धे हुए हैं और न केवल उस सामान्य रक्त से ही जो कि हमारी धमनियों में बहता है और हमें जीवन देता है और हमारे प्रेमानुराग को बनाए रखता है वरन् उस सामान्य उपासना के बन्धनों से भी जो कि हम अपनी महान सभ्यता हिंदू संस्कृति के प्रति करते हैं, जो उस भाषा के संस्कृत शब्द से उत्पन्न संस्कृति शब्द से अधिक किसी भी अन्य शब्द से सूचित नहीं होसकती और जो हमारे इतिहास में उत्तम, आवश्यक और सुरक्षित रखने योग्य संस्कृति की रक्षा और व्याख्या करने के लिये चुना गया है। हम एक हैं क्योंकि हम एक राष्ट्र हैं, एक जाति हैं और एक ही संस्कृति को मानते हैं।

किन्तु सभ्यता किसे कहते हैं ? सभ्यता मनुष्य के मन की व्याख्या है। मनुष्य ने पदार्थ से जो कुछ भी बनाया है सभ्यता उन्हीं का वर्णन है। यदि पदार्थ ईश्वर की रचना है तो सभ्यता मनुष्य की गौण एवं सूक्ष्म रचना है वस्तुतः यह मानव-आत्मा

की पदार्थ तथा मनुष्य पर पूर्ण विजय है। जहां कहीं भी और जितना भी मनुष्य ने अपनी आत्मा को सुख देने के लिए पदार्थ को अपने कार्यों में लगा लिया है उतनी ही सभ्यता उत्पन्न होती है। और उसे उस समय पूर्ण विजय मिल जाती है जब वह परम आनन्द (Supreme Delight) प्राप्ति के समस्त उद्गमों को खोज निकालते हैं। जिनसे उनके आध्यात्मिक अस्तित्व (Spiritual Being) की शक्ति, सौंदर्य, प्रेम और जीवन की वास्तविकताओं को पूर्णतया और धन धान्य से पूर्ण समझने की महत्वाकाक्षाओं को सन्तुष्टि मिलती है।

किसी राष्ट्र की सभ्यता की कहानी उसके विचारों (Thoughts), कार्यों (actions), और उसकी उन्नत्तियों (Achievements) की कहानी ही है। साहित्य और कला हमें उसके विचारों का परिचय देते हैं, इतिहास और सामाजिक संस्थायें उसके कार्यों और उन्नत्तियों का इनमें से किसी से भी मनुष्य पृथक नहीं रह सकता। अण्डमानियों की प्राथमिक डुंगी वास्तव में अमरीका के आज के सुसज्जित युद्ध जहाज को प्रभावित करने वाली समझी जा सकती है। पैरिस की सुन्दरियों के फैशन बढ़ाने के विलक्षण उद्योग उन 'पातुआ' लड़कियों को सन्तुष्ट करने वाले कटि में बंधे पत्तों का ही उत्तर रूप हो सकता है।

और तब भी 'डुङ्गी' डुङ्गी ही है और लड़ाई का जहाज लड़ाई का जहाज ही, वे एक दूसरे से इतने भिन्न हैं कि उनको एक कभी भी नहीं कहा जा सकता। तब भी अन्य पुरुषों की भांति

हिन्दुओं ने भी दूसरों को अधिक दिया है और दूसरों से अपनाया भी है, तो भी उनकी सभ्यता किसी अन्य सांस्कृतिक एकाङ्ग की विशेषताओं से हमें भ्रम में नहीं डाल सकती। दूसरे उनका परस्पर अन्तर चाहे कितना ही प्रभावशाली क्यों न हो इतनी समानता है कि उनको उनमें सांस्कृतिक एकांग मानने से इन्कार भी नहीं किया जा सकता।

यह उन लोगों को लोक विरुद्ध ज्ञात हो सकता है जो उस मनोरंजक और अज्ञानी वाणी से प्रभावित हो गए हैं जिसने वर्तमान संसार का ध्यान भी अपनी ओर आकर्षित किया है कि हिन्दुओं का कोई इतिहास नहीं है। यह बिल्कुल सत्य नहीं है कि हिंदू ही केवल ऐसे व्यक्ति हैं जिन्होंने अनेक आपत्तियों को झेलते हुए भी अपने इतिहास की रक्षा में सफलता प्राप्त की है—भूकम्पों में, असीम वर्षा की बाढ़ में उन्होंने उसकी रक्षा की है। वह वेदों से आरम्भ होता है जो हमारी जाति की कहानी के प्रथम विस्तृत अध्याय ही हैं। वह प्रारम्भिक गायन जिन्हें प्रत्येक हिंदू लड़की ध्यान से सुनती है—सुन्दर सीता का वर्णन करते हैं। हम में से कुछ राम की अवतार रूप में उपासना करते हैं, कुछ वीर योद्धा और नायक होने के कारण प्रशंसा करते हैं, किन्तु सब ही उन्हें अपनी जाति के प्रतिनिधि प्रख्यात राजा होने के कारण हृदय से प्यार करते हैं। हिंदू युवकों के लिये मारुति और भीमसेन शक्ति और भौतिक पूर्णता के सतत उद्गम हैं। हिंदू स्त्रियों के लिये सावित्री और दमयन्ति पवित्रता और निश्चलता की

उज्ज्वल आदर्श हैं। राधा का गोकुल में दैवी ग्वाले (Divine cowhard) के प्रति प्रेम जहां कहीं भी हिंदू प्रेमी अपनी प्रेमिका का चुम्बन लेता है—झंकृत हो उठता है। कुरुओं की भयानक लड़ाई, अर्जुन और कर्ण, भीम और दुश्शासन के द्वन्द युद्ध, जो कुरुक्षेत्र के मैदान में सहस्त्रों वर्ष पूर्व हुए थे अब भी स्थान-स्थान पर घर-घर में खेले जाते हैं। अभिमन्यु का मूल्य अर्जुन से हमें अधिक है। लंका से काश्मीर तक—हिंदुस्थान प्रतिदिन अत्यन्त प्रेम और दुःख से उस कमल नेत्र वाले पुरुष के लिये उसके पिता की भान्ति ही आंसू बहाता है। और अधिक क्या कहें? केवल रामायण और महाभारत की कथाएं ही हमें संगठित करके एक जाति बनाने में समर्थ होंगी—चाहे हम रेत की भान्ति चारों दिशाओं में कितनी ही अवछिन्न अवस्था में क्यों न बिखरे पड़े हों। मैं किसी मैजिनी का जीवन चरित्र पढ़ता हूं तो कह उठता हूं "वे कितने देशप्रेमी हैं" मैं किसी माधवाचार्य का जीवनचरित्र पढ़ता हूं तो कह उठता हूं "हम कितने देशप्रेमी हैं।" पृथ्वीराज की पराजय पर बंगाल में शोक मनाया जाता है' गोबिन्दसिंह के प्राणोत्सर्ग (शहीद) कर देने वाले पुत्रों की मृत्यु पर महाराष्ट्र में भी दुख मनाया जाता है। धुर उत्तर में आर्य समाजी ऐतिहासिक जानता है कि उन के लिए धुर दक्षिण के हरिहर और बुका लड़े थे, और एक सनातनी इतिहास कार भी समझता है कि गुरु तेगबहादुर उसके लिए ही मरे थे। हमारे सार्वजनिक सम्राट थे हमारे सार्वजनिक साम्राज्य थे हमारी निश्चलता सार्वजनिक थी। हमारी विजय भी

सार्वजनिक थी। और विनाश भी सार्वजनिक ही थे। मोकावसय्या और पिसाल जयचन्द और काला पहाड़ के नाम पापियों की भांति हैं। अशोक भस्कराचार्य पाणिनी और कपिल के नाम हमें आत्म जागृति की भावना से विद्युत की भांति प्रभावित करते हैं।

किन्तु हिंदुओं के परस्पर नाशक युद्धों के विषय में क्या है? हमारा उत्तर है, अंग्रेजों के रोज़ेज़ (गुलाब के फूलों) के युद्धों के विषय में, क्या है? एक राज्य का दूसरे राज्य के विषय में, एक मत का दूसरे मत के विपत्त में, एक वर्ग का दूसरे वर्ग के विपत्त में विनाशक युद्धों के विषय में क्या है जो अपने देश के विरुद्ध हो विदेशी सहायता की याचना करते हैं। इटली में, जरमनी में, फ्रांस में अमरीका में क्या वे अब भी राष्ट्र हैं? और क्या वे अब भी एक सार्वजनिक इतिहास रखते हैं? यदि वे रखते हैं तो हिन्दू भी रखते हैं। यदि हिन्दुओं का कोई सार्वजनिक इतिहास नहीं है तो संसार में किसी का भी नहीं है।

जिस प्रकार इतिहास हमारी जाति के कार्यों की कथा का वर्णन करते हैं उसी प्रकार साहित्य पूर्णरूप से हमारी जाति के विचारोंऔर आदर्शों का वर्णन करता है, उनका मत है कि विचार (Thought) हमारी सार्वजनिक भाषा संस्कृत से भिन्न नहीं किया सा सकता। वास्तव में यह हमारी मातृ भाषा है जिसमें हमारी माताओं ने सम्भाषण किया है और जिसने वर्तमान भाषाओं को जन्म दिया है। देवता संस्कृत में बोलते थे, हमारे

ऋषि संस्कृत में विचारते थे और हमारे कवि संस्कृत में काव्य रचना करते थे। हममें जो कुछ भी उत्तम है— उत्तम विचार, उत्तम भावना, उत्तम नीति,—वह सब संस्कृत ही का आवरण धारण करते ज्ञात होते हैं। लाखों पुरुषों के लिये यह अब भी उनके देवताओं की भाषा है। अनेकों की यह पूर्वजों की भाषा है, और सबको यह (par excellance) उत्तम भाषा है, यह सार्वजनिक पैतृक सम्पत्ति है, सार्वजनिक कोष है, जो हमारी वर्तमान भाषा गुजराती और गुरुमुखी, सिंधी और हिंदी, तामिल, और तेलगू, महाराष्ट्री और मलयालम्, बंगाली और सिंघाली के समस्त कुलों को समृद्ध बनाती है और जो शक्तिशाली स्नायुतंतु है, जो हमारी भावनाओं और उत्साहों को शक्ति और जीवन देते हुए पूर्णता प्रदान करती है। यह केवल भाषा ही नहीं है वरन् बहुत से हिंदुओं के लिये मन्त्र है, किन्तु सबके लिये एक गायन (Music) है। वेदों को समस्त जैन प्रमाण नहीं मानते। किन्तु वेद उनकी जाति के प्राचीनतम साहित्य और इतिहास होने के कारण जैनों को भी उतने ही सम्मानित हैं जितने हमको। यद्यपि भविष्यपुराण को किसी सनातनी ने नहीं लिखा था तो भी आदि पुराण सनातनियों की और जैनों की समान पैतृक सम्पत्ति है। वसवपुराण लिंगायतों का बाइबिल ही है, किन्तु लिंगायत व अलिंगायत हिंदू उन्हें कनाडी भाषा का प्राचीनतम और ऐतिहासिक विस्तृत ग्रन्थ होने के कारण समान रूप से अपनाते हैं—गुरुगोविन्द द्वारा विरचित 'विचित्र नाटक' बङ्गाल के हिन्दू को उतनी ही वास्तविक सम्पत्ति है जितनी कि

सिक्ख की चैतन्य चरित्रामृत। कालिदास और भवभूति, चरक और सुश्रुत आर्य भट्ट और वाराहमिहर भास और अश्वघोष जयदेव और जगन्नाथ सबने हमारे लिए लिखा था। सब हमारे हृदयों को प्रभावित करते हैं और वे हम सब की सम्पत्ति हैं। यदि किसी बङ्गाली हिन्दू के सम्मुख कंब या तामिल कवि और हाफिज की एक प्रति रखी जावे और पूछा जावे इनमें से तुम्हारी कौन सी है ? वह तुरंत कह उठेगा, कंब मेरा है। यदि किसी महाराष्ट्र के हिन्दू के सम्मुख एक प्रति रवीन्द्रनाथ और एक प्रति शेक्सपिअर की रक्खी जावे तो वह तुरंत ही कहेगा; रवींद्र! रवीन्द्र मेरा है।

चित्रकला और वस्तुकला के कार्य चाहे वे वैदिक या अवैदक विचारों (School of thought) के प्रतिनिधि ही हों-हमारी जाति की सार्वजनिक सम्पत्ति हैं। क्योंकि वे सब परिश्रमी जिन्होंने इन्हें लिखा, वे स्वामी जिन्होंने उनको पथदर्शाया; वे कर देने वाले जिन्होंने उन्हें सहायता दी, वे सम्राट जिन्होंने उनका नियंत्रण किया-चाहे वैदिक हों या अवैदिक उसी ही महान जाति हिंदू जाति के थे जो सिंधु (Indus) से सिंधु (Seas) तक समस्त देश को आबाद करती है। जो आज सनातनी हैं—उस समय उन्होंने बौद्धकालीन चित्रकला और वस्तुकला के सुन्दर कार्यों को परिश्रम से समुन्नत किया था और जो उस समय बौद्ध थे उन्होंने सनातनों के चित्रकला और वस्तुकला के कार्यों को परिश्रम से समुन्नत किया था

सार्वजनिक संस्थाएँ और सार्वजनिक क़ानून जो उनको शुद्ध और प्रमाणित करते हैं चाहे वे विस्तार में कितने ही भिन्न क्यों न हों, तौ भी हमारी जाति की मूल-एकता के कारण और परिणाम दोनों ही हैं। हिंदू-धर्म-शास्त्र के सिद्धान्तों पर निर्भर हिन्दू-कानून में चाहे वाह्य रूप से कितनी ही भिन्नता क्यों न हो और चाहे एक उल्लेख यहां और दूसरा वहां एक दूसरे का कितना ही विरुधी क्यों न दिखलाई दे, एक क्रमिक विकास है जो देश-काल के महान परिवर्तनों में भी अपना व्यक्तित्त्व नहीं खो सकता। अमरीका की अनेक रियासतों और अंग्रेज़ी-राज्य में कानून की प्रबल मशीनों से तीव्र गति से कानून का निर्माण और सुधार होने पर भी हम धर्म-शास्त्र के सिद्धान्तों को और उनके विकास की रीति का जो सहस्त्रों वर्षों से वर्तमान है अनुकरण करते हैं। अंग्रेज़ी कानून या रोम का धर्म-शास्त्र, या अमरीका का कानून किसी प्रकार भी ऐसे नहीं समझे जासकते थे यदि उनमें किसी प्रकार भी सतत अनुरूप या मृत-प्राय-समानता की आशा की जाती। मुसलमानी कानून खोजाज़ या बोहराज़-जो अन्य मुसलमान जातियों की भान्ति अपने जीवन के विभिन्न विभागों को निमंत्रित करने के लिए विशेषकर सम्पत्ति के अधिकारों में हिंदू कानून को मानते हैं-जैसी विनाशक विशेषताओं के होने पर भी अपनी सत्ता को बनाए रखता है। पंजाब या महाराष्ट्र की हिंदू रीतियां बगांल या सिंध की रीतियों से कुछ भिन्न होसकती हैं। किन्तु और सब विस्तृत बातों में इतनी अधिक समानता है कि महाराष्ट्र का सम्पूर्ण कानून बगांल या सिंध

के पुरुषों पर राज्य करने वाले कानून-ग्रन्थों की प्रतिध्वनि ही ज्ञात होता है। जब एक जाति द्वारा माने हुए नियम, रिवाज़ और कानून एकत्रित कर लिए जाते हैं तो यह तुरन्त समझा जाता है कि वह वास्तव में हिंदू-कानून का एक अध्याय ही है-उसे कोई भी युक्ति या यातना अंग्रेजी या मुसलमानी या जापानी कानून-ग्रन्थों से उचित रूप में प्रभावित सिद्ध नहीं कर सकती।

हमारे यहां सार्वजनिक भोज और त्यौहार मनाए जाते हैं। हमारे यहां सार्वजनिक संस्कार और पध्दतियां हैं। दशहरा और दिवाली, राखीबन्धन और होली जहां कहीं भी हिंदू रहता है-मनाता है। सिक्ख और जैन, ब्राह्मण और पंचम् सम्पूर्ण हिंदू जनता को एक समान ही दिवाली के दिन उत्सव मनाते हुए पाओगे। केवल हिंदूस्थान ही में नहीं वरन् उस महान् हिंदूस्थान में जो संसार के महाद्वीपों में शीघ्र ही प्रकाशित हो रहा है। तराई के जंगलों तक में कोई भी झोंपड़ी ऐसी दिखाई नहीं देगी जिसने कि दिया न जला रक्खा हो। राखी-दिवस के दिन मदरासी ब्राह्मण से प्रसन्न पंजाबी स्त्री तक उस रेशमीन बन्धन को बांधते हुए ज्ञात होंगे जो, हृदय को हृदय से, मन को मन से, देह में और आत्मा में बांध सकता है। तब भी हमने जानबूझ कर उन धार्मिक विश्वासों का वर्णन नहीं किया जो हम एक सम्पूर्ण जाति में सार्वजनिक रूप से मनाते हैं। न हमने किसी संख्या, घटना या रिवाज़ का धार्मिक दृष्टिकोण या महत्ता से

उल्लेख ही किया है। क्योंकि हमारा उद्देश्य हिंदुत्त्व की विशेषताओं का उल्लेख करना है किसी 'धर्म' (Ism) के विचार से नहीं वरन् जातीय दृष्टिकोण से; और फिर भी राष्ट्रीय और जातीय दृष्टिकोण से यात्रा के अनेकों स्थान हिंदू जाति की सार्वजनिक पैतृक सम्पत्ति हैं। जगन्नाथ के रथयात्रा उत्सव, अमृतसर में बैशाखी, कुम्भ और अर्द्धकुम्भ उन व्यक्तियों के जीवित और वास्तविक सम्मेलन के मेले हैं —जिन्होंने हमारी सामुहिक नीति में जीवन और विचार धारा को प्रभाहित कर रक्खा है। उनके विलक्षण रीति-रस्म और धर्म संस्कार जिन्हें सहस्त्रों पुरुष धार्मिक कर्त्तव्य समझ कर मानते हैं, बहुत से सामाजिक आवश्यकता समझकर मानते हैं प्रत्येक व्यक्ति को इस बात से प्रभावित करते हैं कि वह हिंदू जाति के सार्वजनिक और सम्मिलित जीवन के आधार पर ही सबसे अधिक उत्तामता से जीवन व्यतीत कर सकता है।

विस्तार में न जाते हुए, क्यौंकि यह विषय हमें इस बात को विस्तृत व्याख्या करने से रोकता है—ये सब हमारी सभ्यता के सार हैं। और हमारी सांस्कृतिक एकता को प्रदर्शित करते हैं। हम हिंदु केवल एक राष्ट्र और एक जाति ही नहीं हैं, किन्तु दोनों के परिणाम स्वरूप हमारी संस्कृति भी एक ही है जो संस्कृत भाषा में ही विशेषकर रक्षित हुई है और व्यक्त हुई है जो हमारी सच्ची मातृभाषा है। जो कोई भी हिंदू है-संस्कृत को पैतृक-सम्पत्ति के रूप में मानता है और अपनी आध्यात्मिक

सेवा के लिए उसका उसी प्रकार ऋणी होता है, जिस प्रकार वह शारीरिक शक्ति के लिए अपने देश और अपने पूर्वजों के रक्त का ऋणी होता है।

अतएव हिंदू वह है जो सिंधु-से सिंधु तक के विस्तृत देश को पितृभूमि मानता है; जो उस महान जाति के रक्त को कुलक्रम से प्राप्त करता है—जिसका सर्वप्रथम और आवश्यक उद्गम वैदिक सप्त सिंधुओं के हिमालय के उच्चशिखरों से मालूम किया जाता था और जो सम्मिलित को अपनाकर और अपनाए हुए को उत्तम बनाकर हिंदु-जाति कहलाती थी; और जो पहली बातों के परिणाम स्वरूप हिंदू संस्कृति को, हिंदु सभ्यता को अपनाते हैं और उसे अपना अधिकार मानते हैं जो कि सार्वजनिक इतिहास में सार्वजनिक कला में, सार्वजनिक कानून में, सार्वजनिक धर्मशास्त्र में, सार्वजनिक मेलों और उत्सवों में, संस्कार और क्रियाओं में, उत्सवों और पवित्र कार्यों में सर्वत्र विद्यमान हैं। यही नहीं, प्रत्येक हिंदू की, हिंदू-संस्कृति की विस्तृत बातें एक एक अक्षर तक अन्य हिंदूओं के अनुरूप ही होती हैं; वरन् यह भी, उसमें हिंदू भाईयों के अनुरुप किसी अरब या अंग्रेज से अधिक समानता है।

यह नहीं कि अहिन्दू हिन्दू की इन वीस्तृत बातों को सामान्यतः नही अपनाता, वह हिंदू के उतना समान नहीं जितना कि विरुद्ध है। यहीं कारण है कि ईसाई और मुसलमान जातियां जो कुछ काल पहिले हिंदू ही थी और अधिकतर प्रथम पीढ़ी में नवीन धर्म के अतिच्छित नागरिक रहे हैं।

इस देश को पितृभूमि की भान्ति मानने पर तथा हमारे साथ रक्त की पवित्रता और पूर्वजों से सम्बन्ध स्थापित करने पर भी हिंदु नहीं कहाए जासकते; क्योंकि नवीन धर्म को अपनालेने के कारण वे हिंदू-संस्कृति को पूर्णतया मानने से वंचित होगए हैं। उनकी धारणा है कि वे उस संस्कृति को मानते हैं जो हिंदू-संस्कृति से नितान्त भिन्न है। उनके चरित्र नायक और उनकी उपासना, उनके मेले और उत्सव, आदर्श और जीवन के दृष्टिकोण, हमारी संस्कृति के समान नहीं रह गए हैं। अतएव हिंदुत्व की यह तीसरी विशेषता जो प्रत्येक हिंदु को अपनी संस्कृति को अगाध प्रेम और आसक्ति से मानने को वाध्य करती है हमें हिंदुत्व की प्रकृति को बिना किसी भ्रमात्मक या पूर्वकथित प्रमाणों के निर्धारित करने की योग्यता देती है।

अपने देश के किसी देश भक्त बोहरा या खोजा का उदाहरण लो। वह हमारे देश हिंदुस्थान को अपनी पितृभूमि की भांति प्यार करता है जो निर्विवाद उनके पूर्वजों का देश है। वह कुछ बातों में शुद्ध हिंदु रक्त रखता है; विशेषकर यदि वह मुसलमान धर्म में प्रथम बार ही परवर्तित हुआ है—उसे हिंदू माताओं पिता के रक्त को मानने की आज्ञा मिलनी चाहिए। वह चतुर और न्यायसिद्ध पुरुषों की भान्ति हमारे इतिहास से प्रेम करता है, हमारे चरित्र नायकों से प्रेम करता है, वास्तव में बोहरा और खोजा—जाति रूप में, हमारे देश के अवतारों को मोहम्मद साहब के ग्यारहवें अवतार के साथ चरित्र नायकों की भांति पूजते हैं। वह वास्तव में अपनी-जाति के सहित हिंदु-कानून

के अंतर्गत आजाता है जो उनके पूर्वजों का कानून था। जहां तक राष्ट्र, जाति और संस्कृति की तीन विशेषताओं का सम्बन्ध है वह हिंदु ही है। वह कुछ उत्सवों के कारण भिन्न होसकता है या अपने महापुरुषों में या अपने देवताओं को सन्तति में कुछ अधिक नायक जोड़ सकता हैं। किन्तु हमने बार बार कहा है कि इधर विस्तार में कुछ मतभेद और उधर कुछ आग्रह हमें हिंदू-संस्कृति की सीमा से बाहर नहीं निकालता। हिंदुओं को उप जातियां ऐसे अनेक संस्कारों को मानती हैं जो केवल हिंदू जाति के संस्कारों के विरुद्ध ही नहीं हैं वरन् उनसे वैमनस्य भी रखते हैं। किन्तु तो भी दोनों हिंदु ही हैं। इसी प्रकार बौहरा या ईसाई या खोजा जो हिंदुत्व कीं तीनों विशेषताओं को प्रदर्शित करते हैं क्यों न हिंदु मान लिया जावे ?

वह अवश्य ही हिंदु स्वीकार कर लिया जाता यदि वह उस एक मात्र विशेषता की ओर अपनी रुचि प्रदर्शित करता जो यद्यपि संस्कृति शब्द से ढकी हुई है तो भी यह इतनी आवश्यक है कि अन्य गुणों के सामने उसे भुलाया नहीं जासकता और इसलिए उसका उल्लेख और विश्लेषण करना विशेषकर आवश्यक है जो इस प्रश्न को भी प्रस्तुत करती है जिस में-हिंदुत्त्व का धार्मिक भाव निहित है—उसे हमने प्रायः विस्मृत किया है, इसलिए नहीं कि हमें उससे लज्जा आती है किन्तु, इसलिए कि उसकी पूर्णतया और प्रभावशाली व्याख्या करें। क्योंकि हम अब हिन्दूधर्म और हिंदुत्त्व की विशेषताओं का विश्लेषण और उन की महत्ता का निर्धारण करने के अधिक योग्य होगए हैं।

— ६ —

हिंदूधर्म और हिंदुत्व दोनों शब्द हिंदु शब्द से ही उत्पन्न होने के कारण निश्चय ही समस्त हिंदू जाति के सूचक होने चाहिएँ। हिंदूधर्म की कोई भी ऐसी परिभाषा जो हमारी जाति के किसी मुख्यवर्ग को छोड़ देती है या उन्हें अपनी धारणाओं के प्रति असत्य बोलने को या हिंदुत्व की सीमा से बाहर निकल जाने को बाध्य करती हैं स्वयं ही निंदनीय है। हिंदुधर्म धार्मिक विश्वासों की वह पद्धति है जो हिंदुजाति से सामान्यतः मिलती है। और हिंदुओं के उन धार्मिक विश्वासों को जो हिंदुधर्म का निर्माण करते हैं जानने का केवल मात्र उपाय 'हिंदु' की व्याख्या करना ही है। हिंदुधर्म के इस प्रमुख भाव को जो स्पष्टतया हिंदु की स्वतन्त्रता धारणा का निर्देश करता है भुलाने पर बहुत से व्यक्ति हिंदुधर्म की विशेषताओं को जानने का प्रयत्न करते हैं और कोई भी ऐसो सन्तोषजनक परिभाषा ज्ञात न होने पर जो कि स्वतन्त्रता से सम्पूर्ण हिंदुजाति को सम्मिलित कर सके इस निराशाजनक परिणाम पर पहुँचते हैं, जो उनको किसी भी प्रकार सन्तुष्ट नहीं करता,—तो क्या वे जातियां बिलकुल भी हिंदु नहीं हैं! क्योंकि—इसलिए नहीं कि जो परिभाषा उन्होंने बनाई है वह उनको नहीं अपना सकी किन्तु इसलिए कि वे जातियां उन आवश्यक सिद्धान्तों को नहीं

मानतीं जिन्हें इन सज्जनों ने "हिंदुधर्म" का नाम देना उचित समझा है। इस प्रश्न की उत्तर देने की परिपाटी वास्तव में असङ्गत है कि "हिंदू कौन है?" जिसने हमारे अवैदिक विचारों के पोषक भाइयों, सिक्खों, जैनियों, देव-स्वामियों और यहां तक कि हमारे देशभक्त और प्रगतशील आर्यसमाजियों में भी बड़ी भ्रमपूर्ण कटुता उत्पन्न करदी है।

"हिंदु कौन है?"—वह जो हिंदुधर्म के सिद्धान्तों को मानता है। बहुत ठीक। हिंदुधर्म क्या है। वे सिद्धान्त जिन्हें हिन्दू मानते हैं। यह तर्क को चक्र को भान्ति भ्रम में डालना है और कभी भी सन्तोष-जनक व्याख्या की ओर नहीं लेजा सकता। हमारे बहुत से मित्र जो इस अनुचित पद पर चल रहे हैं—हमें बतलाते हैं कि हिंदुओं के जैसी कोई जाति ही नहीं है। यदि कोई भारतीय उस अंग्रेज़ के समान बुद्धिमान जिसने सबसे प्रथम "हिंदूधर्म" शब्द की रचना की थी, उसके समानान्तर शब्द 'अंग्रेज़ी धर्म' (Englishism) की रचना करता है और उसमें निदित अंग्रेज़ों के विश्वासों को खोजने का प्रयत्न करता है तो वह यहूदियों से जैकोबिन तक, ट्रिनिटो से युटिलिटी तक के सहस्त्रों मतों और समाजों से निराश होकर कह उठता है "अंग्रेज जैसी कोई जाति ही नहीं है" वह अपना उससे अधिक उपहास नहीं कराता। ठण्डे दिल से कहते हैं "हिंदु जाति जैसी कोई जाति ही नहीं है।" जो कोई इस बात को देखना चाहें कि इस विषय में कितने भ्रमपूर्ण विचार

फैले हुए हैं और किस प्रकार इन दोनों शब्द हिंदूधर्म और हिंदुत्व की अलग २ वर्णन न कर सकने की असफलता ने इन विचारों को और भी भ्रम में डाल दिया है—उसे "हिंदुधर्म की विशेषताएँ" नामक पुस्तक जो "नटसन एण्ड कं०" द्वारा प्रकाशित हुई है पढ़नी चाहिए।

हिंदूधर्म हिंदुओं के धर्म का निर्देश करता है। और हिंदु शब्द के सिंधु (Indus) से उत्पन्न होने के कारण जिसका मूल भाव उन व्यक्तियों से था जो सिंधु से सिंधु तक के प्रदेशों में निवास करते थे, हिंदुधर्म निश्चय ही उस धर्म या धर्मों को सूचित करता है जो इस देश, और इसके निवासियों के लिए स्वभाविक और विलक्षण हैं। यदि हम भिन्न २ सिद्धान्तों और विश्वासों को एक धार्मिक पद्धति में परिवर्तित करने में असमर्थ हैं तो एक मात्र यही उपाय होगा कि हम हिंदूधर्म को एक पद्धति न मानें और यह न कहें कि यह एक दूसरे की अनेक पद्धतियों का समूह है जो आपस में एक दूसरे को विरोधी और वैमनस्यकारी हैं। किन्तु किसी भी प्रकार हिंदूधर्म का अर्थ निर्धारित न कर सकने की असफलता हिंदू-राष्ट्र के अस्तित्त्व पर सन्देह करने का कारण नहीं होसकता, और न यह उन्हें अहिन्दु सीमा से सम्बन्धित करदेने से हमारे वैदिक या अवैदिक भाईयों को एकसा ही आघात पहुँचाने का कारण ही हो सकती है।

इस निम्बन्ध की सीमाएँ हमें हिंदूधर्म की विशेषताओं का

या उसके स्वभाव का अधिक विस्तार में विवेचन करने की आज्ञा नहीं देती। जैसा हम अपनी खोज में ऊपर दर्शा चुके हैं—हिंदू धर्म क्या है ? इस प्रश्न के पश्चात कि 'हिंदू कौन है'—आरम्भ करना ही उचित होगा। हिंदुत्व की विशेषताओं को मालूम करने से ही ठीक ठीक ज्ञात होजावेगा। और चूंकि यहां पर हमारी खोज का अभिप्राय हिंदुत्व की विशेषताओं से ही है जो हमें बतलाती हैं कि हिंदु कौन है; हिंदूधर्म का विवेचन निश्चय ही हमारे निर्णय से बाहर की बात है। हमें उसका केवल उतना ही उल्लेख करना है जितना कि हमारे मुख्य विषय के क्षेत्र में आता है। हिन्दूधर्म वह शब्द है जिसे वास्तव में हिंदुओं की भिन्न भिन्न जातियों के सम्पूर्ण धार्मिक विश्वासों को व्यक्त करना चाहिये था। किन्तु यह सामान्यतः उस धार्मिक पद्धति का सूचक होगया है जिसका अधिकांश हिंदू अनुसरण करते हैं। किसी धर्म को, देश को या जाति को अपना नाम इस प्रमुख लक्षण पर ही रखना जो कि जनता में प्रायः सार्वजनिक रूप से माना जाता है और जो उसको सहायता देता है या बनाता है, स्वाभाविक ही है। यह सम्भाषण या सरल संकेत के लिए उपयुक्त भी है। किन्तु कोई उपयुक्त वाद जो न केवल भ्रमात्मक ही है वरन हानिकारक और निश्चय ही कुमार्ग में लेजाने वाला है हमारे न्याय को नष्ट करने के लिए बिल्कुल भी प्रयुक्त नहीं होना चाहिए। अधिकांश हिंदू उस धार्मिक पद्धति को सहायता देते हैं जिसका वर्णन उस गुण से किया जा सकता है जो उसकी प्रमुख आकृति को बनाता है अर्थात—"श्रुतिस्मृतिपुराणोक्त"

धर्म या सनातन धर्म। उसके वैदिकधर्म कहलाए जाने में भी उन्हें कोई आपत्ति नहीं है। किन्तु इनके अतिरिक्त और भी हिंदू हैं जो पूर्णतया या कुछ अंशों में स्मृतियों, पुराणों और कुछ श्रुतियों के प्रमाणों को अस्वीकार करते हैं। किन्तु यदि तुम हिंदुओं के धर्म का उस धर्म से जिसे अधिकांश लोग मानते हैं समीकरण करो और उसे कट्टर हिंदूधर्म कहो, तो भिन्न भिन्न धर्मविरोधी जातियां स्वयं हिंदू होती हुईं अधिकांश के हिंदुत्व के अपहरण का और अनुचित रूप से जाति च्युत कर देने का उचित ही विरोध करेंगी। अल्पांश जातियों के धर्म को भी नाम की आवश्यकता है। यदि तुम कट्टर धर्म को केवल हिंदूधर्म ही कहो तो स्वभावतः ही यह परिणाम निकलता है कि इन धर्म-विरोधी कहलाने वाली जातियों का धर्म हिंदुधर्म नहीं है। जिसका दूसरा विनाशक परिणाम यह है कि यह जातियां बिल्कुल भी हिन्दू नहीं है!! किन्तु यह परिणाम उनको भी इतना सन्देह-युक्त ज्ञात होता है जिन्होंने नासमझी से उसे इतनी हार्दिक सहायता दी है जिसने उसे तर्क से प्रायः अवश्यम्भावी बना दिया कि जिसे वे अपनाने में घृणा करते थे, वे नहीं जानते उसको किस प्रकार छोड़ा जावे। तब हमें ज्ञात होता है कि हमारे लाखों सिक्ख, जैन, लिंगायत, अनेक समाजी तथा और भी बहुत से इस कथन का विरोध करेंगे कि वे जिनके पिताओं के पिताओं की नसों में दसवीं पीढी तक हिंदुओं का रक्त बहता था—सहसा हिंदू कहलाए जाने से रुक गए हैं। तौ भी उनका

एक विभाग इसको विशेषतया स्वीकार करता है कि उनके सम्मुख जो प्रतिज्ञाएं रक्खी गई थीं कि यातो उनको उन विश्वासों और संस्कारों को मानना चाहिए जिनमें कि प्रगतिशील या धर्म-कट्टरता की भावना थी और जिनको अन्ध-विश्वास समझ कर त्याग दिया गया था, या उनको उस जाति को त्याग देना चाहिये था जो उनके पूर्वजों की जाति थी।

यह सब वैमनस्य हिंदुधर्म शब्द के अशुद्ध प्रयोग के कारण ही उत्पन्न हुआ है जिसका अर्थ केवल उस धर्म में लिया जाता था जिसे अधिकांश जनता मानती थी। या तो शब्द को उसका उचित अर्थ मिलना चाहिये, जिससे 'समस्त हिंदुओं के धर्म' का निर्देश होता या यदि वैसा करने में समर्थ नहीं हो तो उसे पूर्णतया विस्मृत कर देना चाहिए। हिंदुओं में अधिकांश का धर्म प्राचीन नाम सनातन धर्म या 'श्रुति स्मृति पुराणोक्त धर्म' या वैदिक धर्म ही से बड़ी उत्तमता से व्यक्त किया जा सकता है; जब कि शेष हिंदुओं के धर्मों के सम्मानित और स्वीकृत नाम सिक्ख धर्म, जैन धर्म या आर्य धर्म या बुद्ध धर्म ही रहेंगे। जब इन धर्मों का पूर्ण उल्लेख करने की आवश्यकता होगी तब हम इनके प्रारम्भिक नाम हिंदुधर्म से व्यक्त करने में ठीक ही होंगे, अतः इससे न तो स्पष्टता में और न भावना में ही कोई क्षति होगी वरन् वह और भी सूक्ष्म एवं स्पष्ट हो जावेगा। संदेह और क्रोध को दूर कर देने पर हम सब हिंदुओं को सार्वजनिक प्राचीन झण्डे के नीचे लाकर एकता में आवद्ध करदेगा। वह हमारी सार्व-

जनिक जाति और सभ्यता का प्रतिनिधि है।

न केवल भारतीय जाति, वरन् सम्पूर्ण मानव जाति के प्राचीनतम प्रमाण जिनका हमारे पास कोई उल्लेख है—वेद हैं, सप्त सिंधुओं का वैदिक राष्ट्र अनेक समूहों और वर्गों में विभाजित था। किन्तु यद्यपि अधिकांश लोगों का उस समय विश्वास था कि हम सरलता के लिए उसे वैदिक धर्म कहते हैं तिसपर भी उसका समर्थन सिंधुओं के किसी प्रमुख अल्पांश तक ने नहीं किया था। पाणी, दास, व्रात्य और बहुत से अनेक लोग समय समय पर या तो कट्टर संस्था से अलग हुए मालूम पड़ते हैं या कभी उसके नही रहे होंगे तौ भी जातीय और राष्ट्रीय दृष्टि से उन्हें एक जाति होने का पूर्ण ज्ञान था। वैदिक धर्म जैसी वस्तु अवश्य थी, किन्तु वह सिंधु धर्म के अनुरुप भी सिध्द नहीं किया जा सका था; क्योंकि यह बाद का नाम (सिंधु धर्म) यदि वह घड़ा हुआ होता तो स्वभावतः ही वह सप्त सिंधुओं में प्रचलित धर्मों का निर्देश करता चाहे वे कट्टर होते या उदार होते। मिला लेने और त्याग देने की क्रिया से अन्त में सिंधुओं की जाति हिंदुओं की जाति में और सिंधुओं का देश सिंधुस्थान—हिंदुओं के देश हिंदुस्थान में परिवर्तित होगया। जबकि उनको धर्मावलम्बी और धर्म विरोधी धार्मिक संस्थाओं ने पर्याप्त परीक्षा साहस और खूब ज्ञान प्राप्त कर लेने के पश्चात और जिसने तत्कालीन अन्वेषक परीक्षाओं से सब कुछ खोज लेनें के पश्चात् जो भी विशालतम् व सूक्ष्मतम के अन्तर्गत

था, अणु से आत्मा तक, परमाणु से परब्रह्म तक जब विचारों की गम्भीरता को ध्वनित करने पर, आनन्द के उच्चतम शिखरों पर विचरण करने पर—एक संयोग को जन्म दिया था जो अद्वैतवादी से नास्तिक तक समस्त सत्य के सिद्धान्तों के साथ सहानुभूति दिखलाता था। उसका उद्देश्य 'सत्य' है और अनुभूति उसकी विधि है। यह न वैदिक है और न अवैदिक, वरन् दोनों ही। यह प्रयोगात्मक (applied) धर्म का यथार्थ विज्ञान है। यह हिंदुधर्म है—उन परिणामों का परिणाम जो उन वैदिक, सनातनी, जैन, बौद्ध, सिक्ख या देवसमाजी आदि समस्त धार्मिक संस्थाओं की विस्तृत अनुभूतियों को झंकृत करने से उपलब्ध हुए हैं। उन विभागो या पद्धतियों में से प्रत्येक और हर एक जो अवैदिक या वैदिक धार्मिक विश्वासों के क्रमिक विकास और वंशज ही हैं, जो सप्तसिंदुओं के देश में उपलब्ध हुए हैं या वैदिककाल में भारत के अन्य भागों की अल्प संख्यक जातियों से मिले हैं—हिंदुधर्म के एक भाग हैं और उस के मुख्य अंग हैं।

अतएव वैदिक या सनातन धर्म स्वयं हिंदुधर्म के एक विभाग मात्र हैं—चाहे उनको मानने वालों की संख्या कितनी ही अधिक क्यों न हो। वह सनातन धर्म की एक परिभाषा थी जिसे स्वर्गीय लोकमान्य तिलक ने इस प्रसिद्ध कविता में रचा था "प्रामाण्य बुद्धिर्वेदेषु साधनानामनेकता। उपास्यानामनियम एतद्धर्मस्य लक्षणम्॥" 'चित्रमय जगत' में प्रकाशित

उनके विद्वता से पूर्ण एक लेख में जो उनके अगाध पाण्डित्य और अन्तर्दृष्टि का सूचक है, लोकमान्य तिलक ने इस निषेधात्मक परिभाषा को स्वीकृत परिभाषा में विकसित करते हुए स्पष्टतया सुझाया है कि उनकी दृष्टि हिंदुत्व पर नहीं थी किन्तु उसपर जो विशेषतया हिंदुधर्म कहलाया था; और यह भी स्वीकार किया था कि यह अपनी सीमा में आर्यसमाजियों को सम्मिलित नहीं करता तथा अन्य मतों को भी जो जातीय या राष्ट्रीय विचारों से हिंदुओं के भी हिंदु हैं। वह परिभाषा, जहां तक उसका सम्बन्ध है अतिउत्तम है; किन्तु हिंदुधर्म की परिभाषा नहीं है। हिंदुत्व की तो बिलकुल भी नहीं है, वरन् सनातन धर्म की है जो 'श्रुतिस्मृति पुराणोक्त' मत है, जो हिंदु धर्म के अन्यसब मतों में सबसे अधिक प्रसिद्ध होने पर भी स्वभावतः और लापरवाही से हिंदुधर्म समझ लिया गया है।

अतएव हिंदुधर्म व्युत्पत्ति के विचार से तथा यथार्थ रूप में भी अपने धार्मिक दृष्टिकोण से ही हिंदुओं का धर्म है (क्योंकि धर्म केवल मत ही नहीं है); यह उन सब विशेषताओं को अपनाता है जो हिंदू को चरितार्थ करती हैं। हमने मालूम किया है कि हिंदू की सर्व-प्रथम मुख्य विशेषता वह है जिससे वह सिंधु से सिंधु तक के देशको पितृभू:, और मातृभू:, अपने आदि ऋषियों और पूर्वजों का देश मानता है। वह पद्धति या धर्मों का समूह जिसे हम हिंदुधर्म कहते हैं—वैदिक या अवैदिक—इस भूमि के वैसे ही सच्चे पुत्र हैं जैसे कि वे मनुष्य जिनके वे विचार

हैं या जिन्होंने उनमें सत्य के दर्शन किए हैं, अपने मतमतान्तरों सहित हिंदू धर्म के लिए यह देश सिंधु स्थान उसके प्रकानश का देश है—जगती-तल पर यही उसके जन्म का देश है। जैसे कि गंगा-स्वयं विष्णु भगवान के कमल चरणों से आने पर भी कट्टर से कट्टर उपासक और साधु के लिए हिमालय की पुत्री है, इसी प्रकार यह देश उस तत्त्व ज्ञान का जन्म-देश है—मातृभू है और पितृभू है जो अपने धार्मिक दृष्टिकोण से हिंदुधर्म ही है। हिंदुत्व की दूसरी प्रमुख यिशेषता यह है कि हिंदु हिंदु-माता-पिताओं का वंशाज होता है और प्राचीन सिंधुओं के रक्त को मानता है और उस जाति को मानता है जो उसके पूर्वजों द्वारा उसकी नाड़ियों में आई है। यह भी हिंदुओं की भिन्न २ धार्मिक संस्थाओं के विषय में सत्य है। क्योंकि, वे भी हिंदु सन्तों और साधकों द्वारा या तो निर्मित होने से या खोजी जाने से उनके सांस्कृतिक, सदाचारी, और आध्यात्मिक वंशज हैं और सप्त-सिंधुओं के विचारों के क्रमिक विकास हैं, संयोग और वियोग की क्रिया से हमारा भी मूल वही हैं। हिंदुधर्म न केवल हिंदुओं के विचार और वातावरणों के ही वरन् हिंदुओं की संस्कृति का भी स्वाभाविक विकास है। वातावरण के वे ढांचे जिनमें उसके वैदिककाल के या बौद्ध, जैन या किसी वर्तमान मत चैतान्य, चक्रधर, वसव, नानक, दयानन्द या राजाराम मोहनराए आदि के दृश्य रखे हुए हैं, वे विरोष नाम और भाषा जिन्होंने उसके उच्चतम् देवी प्रकाशन और आनन्द को, पौराणिक गाथा और दर्शन को

व्यक्त किया है, वे धारणाएं जिनका हमने विरोध किया है और वे धारणाएं जिनको हमने अपनाया है-सब पर हिंदु संस्कृति की अमर छाप है जो उन पर खुदी हुई हैं, मतमतान्तरों से पूर्ण हिंदुधर्म जीवित है, सम्पन्न हो रहा है और उसकी सत्ता हिंदु-संस्कृति के वातावरण में विलीन है, और हिंदु का धर्म उसके देश से इतना मिलता जुलता है कि यह देश उसके लिए न केवल पितृभू ही है वरन् पुण्य भू भी है—केवल पितृभूमि (Father Land) ही नहीं वरन् पुण्य भूमि (Holy Land) भी है।

हां; यह भारत भूमि, यह सिंधुस्थान, हमारा यह देश जो सिंधु से सिंधु तक विस्तृत है हमारी पुण्यभूमि है, क्यों कि इस देश में ही हमारे धर्म के संस्थापक और सिद्ध जन जिनको 'वेद' अर्थात ज्ञान उपलब्ध था, वैदिक साधकों से दयानन्द तक, जिनसे महाबीर तक, बुद्ध से नागसेन तक, नानक से गोबिन्द तक, बन्दा से बसव तक, चक्रधर से चैतन्य तक, रामदास से राममोहन तक, हमारे गुरु और देवगण उत्पन्न हुए थे, और पालित-पोषित हुए थे। उसके मार्गों की धूल से अब भी हमारे ऋषियों और गुरुओं की पद ध्वनि झंकृत होती है। उसकी नदियां पवित्र हैं, उसके कुंज पवित्र हैं। चान्दनी से सुशोभित घाटों पर या जिनके नीचे लम्बी लम्बी छाया में जीवन की, मनुष्य की, आत्मा की और परमात्मा की, ब्रह्म की और माया की कठिन समस्याओं पर किसी बुद्ध या

किसी शंकर द्वारा वादविवाद हुए थे। आह! प्रत्येक पहाड़ी और प्रत्येक घाटी हमें किसी कपिल या किसी व्यास, शंकर या रामदास की पुण्य स्मृति कराती है। यहां भागीरथ राज्य करता है, वहां कुरुक्षेत्र है। यहां रामचन्द्र ने निर्वासित होने पर प्रथम निवास किया था, वहां जानकी जी ने स्वर्ण-मृग देखा था और अपने प्रेमी से उसे मारलाने का अनुरोध किया था। यहां उस दैविक ग्वाले (कृष्ण) ने अपनी सुमधुर वंशी बजाई थी जिससे गोकुल में प्रत्येक हृदय आनन्द में नाच उठता था मानों कि उन्हें कृत्रिम निद्रा आगई हो। यहां बोधिवृक्ष है, यहां मृगचारा है। यहां महावीर को निर्वाण मिला था। यहां पर उपासकों के समूह के समूह खड़े होते थे जिनमें से नारद बैठकर यह आरती गाते थे: "गगन थाल रविचंद दीपक बने!" यहां पर सम्राट गोपी चंद ने योगी गोपी चंद की प्रतिज्ञाएं धारण की थी और अपने हाथ में एक खप्पड़ लेकर बहिन के द्वार पर एक मुट्ठी भर भिक्षा की याचना की थी। यहां बंदा-बहादुर का पुत्र पिता के सम्मुख टुकड़े टुकड़े कर दिया गया था और युवा-पुत्र का रक्तरंजित हृदय पिता के मुख में डाल दिया गया था केवल इस लिए कि वह हिंदु रह कर ही मर रहा था। यहां का प्रत्येक पत्थर प्राणोत्सर्ग की कथाएं कहता है। ऐ मां, तेरी इंच इंच भूमि यज्ञकुण्ड रह चुकी है! न केवल वहीं जहां 'कृष्णसार मिलता है' वरन काश्मीर से सिंहल तक यह 'यज्ञीयभूमि' है, जो ज्ञान यज्ञ या आत्म यज्ञ से पवित्र की गई है। अतः प्रत्येक हिंदु के लिए संताल से साधु तक यह

भारत भूमि-यह सिंधुस्थान एक साथ ही पितृभू और पुण्यभू है, ।

यही कारण है कि हमारे कुछ मुसलमान या ईसाई देशवासी जो आरम्भ में किसी अहिंदु धर्म को अपनाने के लिए बाध्य कर दिए गए थे और जिन्होंने परिणाम स्वरूप, अन्य हिंदुओं की भान्ति, एक सार्वजनिक पितृभूमि और सार्वजनिक संस्कृति का अधिकांश सार्वजनिक भाषा, कानून, संस्कार, ग्राम-गीत और इतिहास को पैतृक सम्पत्ति के रूप में पाया था—हिंदु नहीं हैं और न हिंदु स्वीकार ही किए जा सकते है। यद्यपि किसी अन्य हिंदु के समान सिंधुस्थान उनके लिए भी पितृभू है तो भी यह उनकी पुण्यभू नहीं है। उनकी पुण्य भूमि सुदूर देश अरब या फिलस्तीन में है। उनकी पौराणिक गाथाएं और देवगण, आदर्श और चरित्र नायक इस देश की भूमि से उत्पन्न नहीं हुए हैं। परिणाम स्वरूप उनके नाम और दृष्टिकोण भी विदेशी उद्गम से निकले हैं। उनका प्रेम बिभाजित हो चुका है। नहीं, यदि उनमें से कुछ उसे मानते हैं जिसे वे कहते हैं तो तब कोई चुनाव की बात नहीं—उनको किसी मनुष्य के लिए अपने पितृभू से पुण्यभू को प्रेम और अनुराग में महता देनी चाहिए। यह स्वाभाविक ही है। न हम तिरस्कार करते हैं और न पश्चाताप। हम केवल उन बातों का उल्लेख करते हैं जो वर्तमान हैं। हमने हिंदुत्व की विशेषताओ को जानने का प्रयत्न किया है और इस प्रयत्न में हमने यह पाया कि बोहरा

और ऐसी ही अन्य मुसलमान या ईसाई जातियां केवल एक को छोड़कर हिंदुत्व की सब विशेषताओं को रखते हैं और वह यह है कि वे भारत को अपनी पुण्यभूमि नहीं मानते।

यह किसी ऐसे सिद्धान्त को अपनाने का प्रश्न नहीं है जो परमात्मा, आत्मा या मनुष्य के विवेचन के किसी नवीन मत का समर्थन करता है। क्योंकि हमारा सच्चा विश्वास है कि हम हिंदु धर्म के किसी सिद्धान्त का उल्लेख नहीं कर रहें हैं-यदि अज्ञातव्य का भी नहीं या वह और तू के सम्बन्ध के स्वभाव का भी नहीं-तो अज्ञात का अनुमान लगाने में कोई सम्भावना नहीं छोड़ी है। क्या तुम अद्वैत वादी हो, वेदान्ती हो, विश्व-देवता वादी हो, नास्तिक हो या अज्ञेय-वादी हो? ऐ आत्मा! तू जो कुछ भी है-तुझे यहां पर प्रेम करने और इन मन्दिरों के मन्दिर में उच्चतम् शिखर तक विकसित होने का पर्याप्त अवसर है—वह मन्दिर जो किसी मानव आधार पर नहीं खड़ा है वरन् सत्य के विस्तृत, गहरे और शक्तिशाली आधार पर निर्मित है। अपने पानी के घड़े दूरस्थ कुएं पर भरने क्यों जाते हो जब कि तुम स्वयं श्वेत जल युक्त गंगा के तट पर खड़े हो? ऐ भाईयों, क्या तुम्हारी नाड़ियों का सार्वजनिक रक्त प्राचीन प्रियतम दृश्यों और बंधनों की पुण्य स्मृतियों से नहीं चिल्ला उठता जिनसे कि तलवार के बलपर तुम्हें अलग कर दिया गया था। तब तुम अपने भाईयों और बहनों के क्षेत्र में वापिस आओ जो खुले हाथों तुम्हारा स्वागत करने के लिए द्वार पर खड़े हैं—

तुम उनके विस्मृत इष्ट-मित्र हो। तुम्हें इस देश से अधिक कहां इतनी उपासना की स्वतन्त्रता मिल सकती है—जहां महाकाल के मन्दिर की सीढ़ियों से चार्वाक नास्तिकवाद तक की शिक्षा देते हैं, हिंदु-समाज से अधिक स्वतंत्रता कहां मिल सकती है—जहां कि उड़ीसा के पटनाओं से बनारस के पण्डितों तक, सन्तालों से साधुओं तक प्रत्येक एक विभिन्न सामाजिक नीति को चला सकता है या नवीन नीति का निर्माण कर सकता है। वह सत्य है: यदि हास्ति न सर्वत्र यन्ने हास्ति न कुत्र चित्। जो कुछ भी संसार में उलब्ध होसकता है वह यहां है। और जो वस्तु यहां नहीं मिल सकती—कहीं भी नहीं मिल सकती। तुम जो जाति के विचार से, रक्त से, संस्कृति से, राष्ट्रीयता से प्रायः हिंदुत्व की सब विशेषताओं को अपनाते हो और हिंसात्मक प्रबल हाथों द्वारा अपने पैतृक गृह से ज़बरदस्ती छीन लिए गए हो—तुम्हें अपना हार्दिक प्रेम सार्वजनिक माता को दर्शाना होगा और उसे न केवल पितृभू मानना होगा वरन् पुण्यभू भी, तभी तुम्हारा हिंदु संस्था में महान स्वागत होगा।

इसका हमारे देशवासी और पुराने इष्ट-मित्र बोहरा, खोजा, मैमन या अन्य मुसलमान या ईसाई जातियां स्वतंत्रता से चुनाव कर सकती हैं—किन्तु वह प्रेम का चुनाव होना चाहिए। किन्तु जबतक उनकी यह धारणा नहीं होती है तबतक वे हिंदु स्वीकृत नहीं किये जा सकते। यह स्मरण रखना चाहिए कि हम हिंदुत्व की विशेषताओं को मालूम कर रहे हैं और उनका विश्लेषण

कर रहे हैं जिनको कि वह शब्द वास्तव में प्रदर्शित करता है। उसे किसी ऐसे अर्थ से प्रभावित करना जो किसी पूर्व निश्चित विचार या वर्ग की सुगमता से व्याख्या कर सके—न्याय संगत नहीं होगा।

अतएव अबतक के परिणामों के फल स्वरूप हिंदु वह है जो सिंधु से सिंधु तक के विस्तृत देश को अपने पूर्वजों का देश—पितृभू: मानता है, जो उस जाति के रक्त को मानता है जिसका उद्गम वैदिक सप्त सिंधुओं के उदयन में मिलता है और जिन्होंने अपनी यात्रा में जो सहायक था उसे अपनाते हुए और अपनाए हुए को उत्तम बनाते हुए—हिंदु जाति का नाम पाया था, जिन्होंने उस जाति की संस्कृति को अपनाया है जिसका उनकी साहित्यिक भाषा संस्कृत में उल्लेख मिलता है और जो एक सार्वजनिक इतिहास में, साहित्य में, चित्रकला और वस्तुकला में, कानून और धर्मशास्त्र में, संस्कार और पद्धतियों में, उत्सवों और धर्म रीतियों में, मेलों और त्योहारों में दर्शाए गए हैं और सबसे अधिक जो इस देश को—सिंधुस्थान को पुण्यभू कहकर पुकारते है—पुण्यभूमि—उनके उपदेशकों और धर्म उन्नायकों का, उनके देवगणों का और गुरुओं का देश है, उनके सदाचार और यात्रा का देश है। एक सार्वजनिक राष्ट्र, सार्वजनिक जाति और सार्वजनिक संस्कृति—ये ही हिंदुत्व की विशेषताएं हैं। यह सब विशेषताएं सूक्ष्मतया बतलाने पर यह है—कि हिंदु वह है जिसे सिंधुस्थान व केवल पितृभू है वरन् पुण्य भू भी है। क्योंकि

हिंदुत्व की दो विशेषताएं—राष्ट्र और जाति—स्पष्टतया पितृभू से ही सूचित हैं; और तीसरी विशेषता—संस्कृति—पुण्य भू: शब्द से पूर्णतया प्रदर्शित है : सूक्ष्मतया संस्कृति संस्कारों को सम्मिलित करती है। संस्कार, पद्धतियां, उत्सव और धर्माचरण ही हैं जो किसी देश को पुण्य भूमि बनाते हैं। परिभाषा को और सूक्ष्म बनाने के लिए हम निम्न लिखित पदों में सूचित करते हैं :—

आसिंधु सिंधुपर्यन्ता यस्य भारतभूमिका।
पितृभू: पुण्यभूश्चैव स वै हिंदुरितिस्मृतः॥

— ७ —

पिछले अध्यायों में हिन्दुत्व की धारणा के सरसरी तौर पर किए गए विश्लेषण ने हमें इस योग्य बना दिया है कि हम उसकी ऐसी परिभाषा बना सकें जिससे साधारणतया उसकी विशेषताओं के प्रधान गुण व्यक्त होजावें। अब यह देखना शेष है कि यह सामान्य परिभाषा विस्तृत परीक्षा में कितनी सफल होती है—वह परीक्षा कुछ विशेष और भिन्न भिन्न कारणों की जांच ही हो सकती है जिनके कारण हमें हिन्दुत्त्व की परिभाषा की इतनी आवश्यकता पड़ी। उसके विकास में हमने उसे पद-पद पर यथा सम्भव उलझनों से मुक्त करने का प्रयत्न किया है, यद्यपि वह निराकरण (Genralization) इतना भ्रमात्मक और विस्तृत एवं इतना उलझा हुआ था। यदि इस परिभाषा के विचार से कुछ विशेष उदाहरणों की परीक्षा करने पर हमें ज्ञात हो कि वे सब उस परिभाषा में पूर्ण रूप से निहित हैं तो हम निश्चय ही कह सकते हैं कि यह निषेध के प्रतिदोष से भी मुक्त है। हमने देख लिया है कि यह अति-व्याप्ति पर लागू नहीं होती, किन्तु अब यह देखना है कि अव्याप्ति पर भी लागू होती है या नहीं।

उस भौगोलिक विभाग पर जो हिंदुओं में वर्तमान है दृष्टि डालने से ज्ञात होगा कि वह हमारी परिभाषा की भावना के

पूर्णतया अनुरूप है। उसका प्रधान आधार आसिंधु सिंधुपर्यन्ता देश है। यद्यपि हमारे बहुत से भाई विशेषकर वे जो निस्सन्देह प्राचीन सिंधुओं के वंशज है और जो इसके अतिरिक्त वे ही एक मात्र ऐसे व्यक्ति हैं जिन्होंने अब तक कभी भी अपने देश या जाति का नाम परिवर्तित नहीं किया और आज भी जो पांच हजार वर्ष पूर्व :की भांति ही 'सिंधी'—सिंधु देश के निवासी कहलाते हैं—सिंधु नदी के दूसरे तट पर बसे हुए हैं। जिस प्रकार नदी के कहने से उसके दोनों तटों का भी बोध होता है, उसी प्रकार जैसा कि साधारणतया प्रचलित है सिंध का वह भाग जो सिंधु का पश्चिमी तट कहलाता है सिन्धु स्थान का एक प्राकृतिक भाग है जो हमारी परिभाषा में पूर्णतया आजाता है। दूसरे, मुख्य देश के सहायक सदैव उसी के नाम से पुकारे जाते हैं। और तीसरे सिंधुनदी के उस तट के हिंदू निवासी इतिहास में सर्वत्र ही इस भारतवर्ष देश को अपनी सच्ची पितृभू और पुण्यभू मानते रहे हैं। उन्होंने कभी भी अपनी मातृभूमि के प्रति जिसे पितृभू और पुण्यभू माना है कोई आघात करके मातृ-हत्या का पाप नहीं लिया है। दूसरे उनके बनारस और कैलास और गंगोत्री हमारे भी बनारस कैलास और गंगोत्री हैं। वैदिककाल से वे भारतवर्ष के मुख्य अङ्ग रहे हैं। रामायण तथा महाभारत में सिंधु शिवसौवीरों का हिंदु-राज्य और एकता के अधिकारयुक्त अङ्ग होने का उल्लेख मिलता है। वे हमारे रा, हमारी जाति और हमारी संस्कृति के ही

हैं। अतएव वे हिंदू हैं और वे हमारी परिभाषा में पूर्णतया आजाते हैं।

किन्तु यदि कोई इस विवाद को अस्वीकार भी करता है कि नदी के अपनाने से—यदि कुछ बतलाया भी नहीं गया है तो उस के दोनों तटों का अपनाना भी सूचित होता है, तो भी हमारी परिभाषा पूर्ववत सत्य ठहरती है और दूसरे प्रदेशों के हमारे सिंधी भाइयों का निर्देश भी करती है। क्योंकि सिंधु नदी के दूसरे तट पर बसे हुए हमारे सिंधी भाईयों के विशेष उदाहरण के अतिरिक्त और भी सहस्रों ऐसे हिंदू हैं जो पृथ्वी के भिन्न भिन्न भागों में बस गए हैं। एक समय आएगा जबकि हमारे यह "औपनिवेशक हिंदू जो आज भी व्यापार में, संख्या में, योग्यता में और बुद्धिमत्ता में अपने अपने देश के प्रमुख अंग हैं समस्त देश पर अधिकार प्राप्त कर सकेंगे और एक स्वतंत्र राज्य का निर्माण कर सकेंगे। क्या केवल यही कारण कि वे हिंदुस्थान के अतिरिक्त और देशों में रहते हैं—उन्हें अहिंदु बना सकता है? कदापि नहीं! क्योंकि हिंदुत्व की पहली विशेषता यह नहीं है कि किसी हिंदू को हिंदुस्थान के बाहर नहीं रहना चाहिए, किन्तु यह कि जहां कहीं वह या उसके वंशज रहें, उसे सिंधुस्थान को अपने पूर्वजों का देश मानना चाहिए। नहीं नहीं; यह स्वीकार करने का प्रश्न नहीं है। यदि उसके पूर्वज हिंदू रहकर ही आए हैं तो वह भारत को अपनी पितृभू अवश्य ही मानेगा। अतएव हिंदुत्व की यह परिभाषा हिंदूजाति के किसी भी कल्पित विस्तार

का बोध करने की योग्यता रखती है। हमारे उपनिवेशकारों को अपनी अधिक से अधिक योग्यता से एक विशाल भारत, एक महाभारत की स्थापना करने के अथक परिश्रम करते रहना चाहिए और मानव जाति के उत्थान के लिए जो कुछ भी हमारी सभ्यता में सर्वोत्तम है देते रहना चाहिए। वे उन मनुष्यों को अपने उत्तम गुणों से समृद्धशाली बनाएँ जो पृथ्वी में एक ध्रुव से दूसरे ध्रुव तक बसे हुए हैं और इसके बदले में उन्हें अपने देश को और जाति को उत्तम तथा सत्य वस्तुओं से जहां कहीं भी वे मिलें उन्नत बनाना चाहिए। हिंदुत्व हिमालियन अबाबीलों के परों को काटता नहीं बरन् उन्हें उनकी आवश्यकता के अनुसार सहायता देता है। ऐ हिंदुओ! जबतक तुम हिंदुस्थान को अपने पूर्वजों का और अपने उपदेशकों का देश मानते हो और उनकी अमूल्य संस्कृति एवं रक्त को आसक्ति से अपनाते हो तब तक तुम्हारी विस्तृत होने की अकांक्षा में कोई भी रोड़े नहीं अटका सकता। हिंदुत्व की भौगोलिक सीमाएँ हमारी पृथ्वी की सीमाएँ ही हैं!

हमारी परिभाषा का जहांतक जाति से सम्बन्ध है हम किसी ऐसे छूट-छुटाओं को सोच भी नहीं सकते जो उसे दृढ़ता से असत्य सिद्ध कर सके। जिस प्रकार इङ्गलैंड में आईबेरिअन (Iberiaun), केल्ट (Kelts); एगंल्स (Ang'as), सैक्सन (Saxons), डेन (Danes), नौरमन (Normans) आदि व्यक्तियों को अन्तर्विवाह की जातीय वाधा होने पर भी एक राष्ट्र

में निर्मित हुआ पाते हैं, इसी प्रकार प्राचीन आर्यों, कोलार्यों, ड्रेवेडियनों और अन्य व्यक्तियों के जातीय भेदभाव अधिक आवश्यक होने पर भी स्वीकार नहीं किए जा सकते। इस बात का यथावश्यक विवेचन हमने पिछले अध्यायों में सविस्तार किया है और बतलाया है कि हमारे न्यायशास्त्रों में उल्लिखित अनुलोम और प्रतिलोम की पद्धतियां इसका निर्विवाद प्रमाण देती हैं कि उस समय भी हमारी प्रबल और नवीन सामूहिक नीति में सार्वजनिक रक्त का संचार चरमसीम को पहुँच चुका था। प्रकृति ने उन बन्धनों को तोड़ डाला जिन्हें व्यवहार उस समय न तोड़ सके। हिंडिवा से प्रेम करने वाला भीमसेन आर्यों में न तो सर्वप्रथम ही था और न अन्तिम ही था और न व्याध-कर्मा की माता, वह ब्राह्मण स्त्री, जिसका हम पीछे उल्लेख कर चुके हैं अकेली ही ऐसी आर्य-कन्या थी जिसने व्याध युवक से प्रेम किया था। दर्जनों भीलों, कोलियों और यहां तक कि संतालों में से भी कभी कभी उनके लड़के या लड़कियां केवल शारीरिक या सदाचार की परीक्षा लेने पर ही नगर-पाठशाला में बिना किसी अस्वीकृति और भय के बैठा दिए जाते थे। वह जाति जो संयोग से उत्पन्न होती है जो प्रायः स्वस्थ होती है और जो आर्यों, कोलार्यों, द्राविणों तथा हमारे समस्त पूर्वजों से क्रमशः उत्पन्न हुई हैं, जिनका रक्त हमें जाति रूप में मिलता है वह न आर्य, न कोलार्य, न द्राविड़ कह लाती हैं वरन हिंदू जाति जो सर्वथा उपयुक्त ही है। वे अर्थात

मनुष्य जो एक सार्वजनिक मातृ-भूमि में बच्चों की भान्ति रहते हैं उसे सार्वजनिक रूप से पुण्य भूमि मानते हैं वह मातृभूमि, वह पुण्यभूमि सिंधुओं के बीच में फैला हुआ यही देश है। अतएव, सन्ताल, कोली, भील, पंचम, नामशूद्र और इसी प्रकार की अन्य जातियां और वर्ग हिंदु ही हैं। यह सिंधुस्थान उतनी दृढ़ता से यदि अधिक भी नहीं तो आर्यों के समान ही उनके पूर्वजों का देश है; उनकी धमनियों में हिंदुरक्त का और संस्कृति का संचार है; और उनमें से वे भी जो अब तक किसी कट्टर हिंदु-मत के अनुयायी नहीं हुए हैं। देवताओं और सन्तों की पूजा करते हैं और उस धर्म को मानते हैं चाहे वह कितना ही प्राथमिक क्यों न हो—जो पूर्णतया इसी देश का है। अतएव उनके लिए यह देश न केवल पितृभूमि ही है वरन् पुण्यभूमि भी है।

हिंदुत्व के सांकृतिक दृष्टिकोण का कभी भी इतना घोर विरोध न होता यदि हिंदुत्व और हिंदूधर्म की भ्रमात्मक समानता दुर्भाग्यवश इतना भ्रम न फैलाती। हमने पहले ही दोनों मतों को पूर्णतया स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है और हिंदुधर्म से केवल सनातनधर्म का अर्थ करने के अशुद्ध प्रयोग के विरुद्ध भी जोर दिया है। हिंदुत्व हिंदुधर्म का अनुरूप नहीं है; और और न हिंदुधर्म हिंदुपन का अनुरूप है। इन दोनों अशुद्धियों का जो हिंदुत्व को हिंदूधर्म और इन दोनों को सनातन धर्म के अनुरूप बनाती है हमारे असनातनी मत या उनकी धार्मिक पद्धतियां और छोटे छोटे समाज घोर विरोध करते हैं—इस

त्रुटिपूर्ण आशय को दूर करने के लिए नहीं, वरन् अभाग्यवश अन्य गम्भीर और घातक त्रुटि करने के लिए और अपने हिंदुत्व को त्यागने के लिए। हमें आशा है कि हमारी परिभाषा ऐसे कटु विचारों के लिए कोई भी स्थान न छोड़ेगी। और स्वयं सत्य होने के कारण सम्पूर्ण हिंदुसमाज में विचारशील पुरुषों द्वारा स्वीकार की जावेगी। किन्तु इस प्रश्न के साधारण विवेचन में हम किसी मुख्य घटना का आधार न ले सके मगर अब लेंगे। पहले सिक्ख भ्रातृत्व को ही लें। ऐसा कौन मूर्ख होगा जो यह न माने कि सिंधुस्थान, "आसिंधु सिंधु पर्यन्ता यस्य भारत भूमिका" उनकी पितृभूमि है। वही देश जिसे वैदिक काल से अब तक प्रमाणों ने उनके पूर्वजों का निवासस्थान, पूजा, प्रेम और उपासना का देश सिद्ध किया है। दूसरे उनकी धमनियों में निस्सन्देह किसी मदरासी या बंगाली की भांति ही हिंदु रक्त बहता है। इससे भी अधिकः जबकि हम महाराष्ट्र या बंगाल के हिंदु आर्यों का रक्त अपनाते हैं तथा प्राचीन निवासियों का भी जो इस देश में बसे हुए थे, सिक्ख उन्हीं प्राचीन सिंधुओं के वंशज हैं जिन्होंने हमारे हिंदू जीवन की गङ्गा के उद्गम में ही उसके मैदान में आने से पूर्व ही अपनी सत्ता का जल पिया था। तीसरे, हिंदू संस्कृति को सहायता देने के कारण उसके उपयुक्त सहकारी हैं। क्योंकि विद्या और कला की देवी माने जाने से पूर्व सरस्वती पंजाब में एक नदी थी। अब तक भी समस्त हिंदुस्थान में लाखों हिंदू उन अभिमन्त्रित सम्मिलित

भजनों को गाते हैं जिन्हें तुम्हारे पूर्वज सिंधुओं ने गाया था। ऐ सिक्खों! तुमने कृतज्ञ पुरुषों की भांति उस महान नदी की पूजा और प्रशंसा की थी जिसके तटों पर हमारी संस्कृति और सभ्यता के प्रथम बीज बोए गए थे और ऋग्वेद के मन्त्रों को पढ़ते हुए कहते थे "अंबितमे नदीतमें! देवितमें सरस्वती।" वेद जैसे हमारे हैं वैसे ही उनके भी हैं—यदि उनके लिए दैवी-प्रकाशन भी नहीं हैं तो पवित्र ग्रन्थ अवश्य हैं जो प्रकृति के साधनों को खोजने की मनुष्य की भयंकर आपत्तियों का वर्णन करते हैं, अन्धकार और अज्ञान को नष्ट करने वाले प्रकाश का वर्णन करते हैं, वही अंधकार और अज्ञान जिन्होंने उत्तेजित आत्माओं को निर्वासित किया था और प्रकाश-रेखाओं को मानव-स्पर्श से वंचित करके मनुष्य में आत्मप्रकाश का अभाव किया था। अन्यों की भांति सिक्खों की कथा भी वेदों से आरम्भ होनी चाहिए, अयोध्या के राजप्रासादो से होकर लंका के युद्ध क्षेत्रों मेंपहुँचनी चाहिए, लहु को लाहोर की स्थापना करनी चाहिए। राजकुमार सिद्धार्थ को किसी गुफ़ा में मानव को दुखों से मुक्त करने के उपायों की खोज में कपिलवस्तु की सीमा को त्यागते हुए देखना चाहिए। हमारे साथ ही साथ सिक्ख भी पृथ्वीराज की पराजय को रोते हैं, विजय पर आनन्द प्राप्त करते हैं और हिंदुओं की भांति ही सब कुछ झेलते हैं। लाखों सिक्ख उदासी, निर्मल, गहनगंभीर, और सिंधी सिक्ख संस्कृत भाषा की प्रशंसा करते हैं—उनके पूर्वजों की भाषा होने के कारण ही नहीं वरन् देश की पवित्र भाषा होने से भी अन्य लोग उसे अपने पूर्वजों की भाषा मानेंगे

ही क्योंकि यह पंजाबी और गुरुमुखी की माता है जिसके स्तनों का दूध वह अपने बचपन से अब तक पीरही हैं। अन्त में, आसिंधु सिंधु पर्यन्ता देश सिक्खों की न केवल पितृभूमि ही है वरन् पुण्य भूमि भी है। गुरुनानक और गुरु गोविन्द श्री वन्दा और रामसिंह हिंदुस्तान ही में उत्पन्न हुए थे और वही पालित-पोषित भी हुए थे, अमृतसर और मुक्तसर हिंदुस्थान की स्वतन्त्रता की सुधामयी झीले हैं; हिंदुस्थान उपदेशकों और उपासकों के गुरुद्वार और गुरुधर का देश है। वास्तव में यदि कोई निर्विवाद और अनालोच्य हिंदु जाति है तो वह पंजाब में हमारी सिक्ख जाति ही है जो प्रायः सप्तसिंधु देश के मूल निवासी हैं और जो सिंधु या हिंदु व्यक्तियों के वंशज हैं। आज का सिक्ख कलका हिंदु है और आजका हिंदू कल का सिक्ख होसकता है। पोषाक, व्यवहार या दिनचर्या के विस्तार की विभिन्नता रक्त या बीज नहीं बदल सकती और न इतिहास ही को किसी प्रकार दूषित या विकृत कर सकती है।

हमारे लाखों सिक्खो में हिंदुत्व स्वय-सिद्ध है। सहजधारी, उदासी, निर्मल, गहनगंभीर और सिंधी सिक्ख जातीय और राष्ट्रीय विचार से हिंदु होने पर बहुत गौरव प्राप्त करते हैं। अपने गुरुओं को हिंदुओं की सन्तान होने के कारण वे ऐसा कभी नहीं मानेंगे—यदि विरोध भी नहीं करें-कि उनको किसी अहिंदु वर्ग में रख दिया जावे। सनातनी सिक्खों की भांति ही गुरु ग्रन्थ का पाठ एक पवित्र ग्रन्थ की भांति ही करते हैं। दोनों के मेले

और उत्सव सामान्य हैं। तत्खालसा मत के सिक्ख भी, जहां तक अधिकांश का सम्बन्ध है—उनकी जातीय धारणाओं को मानते हैं और हिन्दुओं में हिंदुओं की भांति ही रहते हैं। उनको इससे पर्याप्त आघात पहुँचेगा यदि उनसे सहसा कह दिया जावे कि तुम हिंदु नहीं रहे। हमारी जातीय एकता इतनी पूर्ण और अबाध्य है कि सनातनियों और सिक्खों में अन्तर्विवाह खूब प्रचलित है।

सत्य तो यह है कि हमारे सिक्ख-भ्रातृत्व के नेताओं ने समय समय पर जो हिंदु कहलाए जाने का विरोध किया है वह कभी सुनने में भी न आता यदि हिंदुधर्म को सनातनधर्म के अनुरूप न बनने दिया जाता। उससे उत्पन्न विचारों का भ्रम और भावों की अस्पष्टता इस घातक प्रवृत्ति के मूलाधार हैं जो समय समय पर हिंदू जातियों के परस्पर संबन्ध को रोकती है। हमने यह स्पष्ट करने की कोशिश की है कि हिंदुत्व का निर्णय धार्मिक परीक्षाओं के आधार पर नहीं होसकता। तौ भी हमें एक बार फिर यह दुहराना चाहिए कि सिक्ख उन सब या कुछ वस्तुओं को अस्वीकार करने में स्वतन्त्र हैं जिन्हें वे नहीं चाहते जैसे सनतान धर्म के अन्धविश्वास, यहां तक कि वेदों को भी यदि दिव्य प्रकाश करने वाले प्रमाण नहीं मान सकते तो न मानें। अतएव वे सनातनी चाहे न रहें मगर हिंदू होने से नहीं रुक सकते। किसी धार्मिक विचार से नहीं बल्कि हमारी हिंदुत्व की परिभाषा के अनुसार सिक्ख हिंदू हैं। धार्मिक दृष्टि से

वे सिक्ख हैं जैसे जैनी जैन हैं, लिंगायत लिंगातत हैं, वैष्णव वैष्णब हैं:—किन्तु जातीय, राष्ट्रीय और संस्कृति के विचार से हम सब एक व्यवस्थित समाज हैं, व्यक्ति हैं और अविभाजित हैं अतएव उनका प्राचीनतम् काल से हिंदू कहलाया जाना उचित ही है, अन्य कोई भी शब्द हमारी जातीय एकता को व्यक्त नहीं कर सकता, यहां तक कि भारतीय शब्द भी अपूर्ण है जिसका कारण पिछले अध्यायों में बतला दिया गया है। भारतीय हिंदुस्थानी का बोध करता है और इससे भी अधिक भाव को व्यक्त करता है किन्तु हिंदुओं की जातीय एकता को व्यक्त नहीं कर सकता। हम सिक्ख हैं, हिंदू हैं और भारतीय हैं। सम्मिलित रूप से ही हम सब कुछ हैं अलग कुछ भी नहीं हैं।

सनातन पंथ के अनुयाईयों के समान होजाने के डर के अतिरिक्त जिसने हमारे कुछ सिक्ख भाईयों की हठ को दृढ़ कर दिया था और उन्हें एक अहिंदु वर्ग कहलाए जाने को वाध्य किया था; दूसरा कारण केवल राजनैतिक था। किसी विशेष वर्ग की अच्छाईयों या बुराईयों का निरूपण करने के लिए यहां पर्याप्त स्थान नहीं है। सिक्ख अपनी जाति के विशेष हितों की रक्षा करने के लिए स्वभावतः ही उत्सुक थे और यदि मुसलमान किसी विशेष और जातीय प्रतिनिधित्व (Represen tation) के अधिकार से लाभ उठा सके, हमारी समझ में नहीं आता कि भारत की कोई और प्रमुख अल्पसंख्यक जाति इसी प्रकार की स्वीकृति से लाभ क्यों न उठावे। किन्तु

हमारे विचार से सिक्खों को इस अधिकार का अहिंदु होने की इस घातक और अनाधिकार चेष्टा से प्रतिपादन नहीं करना चाहिए था। अपने हितों की रक्षा करने के लिए सिक्ख एक प्रमुख अल्पसंख्यक जाति होने के आधार पर विशेष और जातीय प्रतिनिधित्व (Representation) प्राप्त करने पर ज़ोर दे सकते थे और सफलता भी पासकते थे जैसे कि हमारी अब्राह्मण तथा अन्य जातियों ने हिंदुत्व के जन्मसिद्ध अधिकार को न त्याग कर भी प्राप्त किया है हमारे सिक्ख भाई किसी प्रकार भी मुसलमान से कम प्रमुख अल्पसंख्यक जाति नहीं हैं—वास्तव में हम हिंदुओं के लिए किसी अहिंदु जाति से अधिक आवश्यक हैं। विशेष और जातीय प्रतिनिधित्व कभी भी इतना हानिकारक नहीं है जितना कि जातीय विभिन्नता की प्रवृत्ति है। सिक्ख, जैन, लिंगायत, अब्राह्मण और ब्राह्मण भी अपने अपने जातीय प्रतिनिधित्व के लिए लड़ें—यदि वे सत्यता से अपनी जातीय उन्नति के लिए उन्हें आवश्यक समझते हैं। क्योंकि उनकी उन्नति ही सम्पूर्ण हिंदू समाज की उन्नति है। यहां तक कि प्राचीन काल में भी चारों प्रमुख वर्ण राजकीय सभाओं तथा स्थानीय सभाओं में भी अपनी २ जाति का प्रतिनिधित्व करते थे। वे सम्पूर्ण एकता में आबद्ध हुए बिना भी और हिंदुत्व की विस्तृत भावना को अपनाए विना भी ऐसा करने में सफल हुए हैं। धार्मिक दृष्टि से सिक्ख सिक्ख रहें, किन्तु, जातीय, राष्ट्रीय और संस्कृति की दृष्टि से हिंदू हैं।

वे वीर पुरुष जिन्होंने सहस्त्रों की संख्या में अपने सिरों को जल्लाद की कुल्हाड़ी के नीचे रखना स्वीकार किया था वरन् अपने गुरु को त्यागना नहीं चाहा—धर्म हेत शाका जिन किया शिर दिया शिरह न दिया। क्या वे अपने बीज को त्याग देंगे, अपने पूर्वजों को त्याग देंगे और अपने जन्माधिकार को लप्सी के सहभोज के लिए त्याग देंगे ! ईश्वर उनकी रक्षा करें। हमारी अल्पसंख्यक जातियों को स्मरण रखना चाहिये कि यदि एकता शक्ति में है तो हिंदुत्व में सुदृढ़ और सबसे अधिक प्रिय बन्धन है जो हमारे व्यक्तियों को एक वास्तविक, टिकाऊ और शक्तिशाली एकता में बांधता है। तुम यह सोच सकते हो कि इस समय तुम्हारा अलग रहना ही तुम्हारे लिए लाभदायक है किन्तु वह हमारी प्राचीन जाति और सभ्यता के लिए और विशेषकर तुम्हारे लिए महान् हानिकारक है। तुम्हारे हित तुम्हारे अन्य हिंदु भाईयों के हितों से सुदृढ़ सूत्र से बन्धे हुए हैं। जब कभी भी पहिले की भांति भविष्य में कोई विदेशी अपनी तलवार हिंदू सभ्यता के विरुद्ध उठावेगा तो किसी अन्य हिंदु जाति की भांति ही तुम्हारे ऊपर भी घोर आघात होगा। विगत की भांति भविष्य में भी जब कभी हिंदू जाति एक राष्ट्र के रूप में शिवाजी या रणजीत, रामचन्द्र या धर्म, अशोक या अमोघवर्ष की अध्यक्षता में जीवन और कार्य के प्रगतिशील स्पर्श का अनुभव करते हुए महानता और गौरव के उच्च शिखर पर पहुँचेंगे तो वह दिन हिंदू साम्राज्य के किसी भी अन्य सदस्य की भांति तुम्हारे ऊपर भी अपना प्रकाश डालेगा। अतएव, भाईयो

क्षणिक लाभों से विचलित न होना—तुच्छ हों या उत्तम हों, और इतिहास के अशुद्ध पाठ तथा अशुद्ध व्याख्या के धोखे में न आजाना। मुझ से एक बार एक मनुष्य ने कहा था जो ग्रन्थी के ढोंग में उसी ब्राह्मण के घर में चोरी करने के कारण दण्डित हुआ था जिसका वह ऋणी था और जिसे उसने मार ही दिया था—कि सिक्ख हिंदु नहीं हैं और किसी ब्राह्मण को मारने में उनको कोई पाप नहीं लगता क्योंकि गोविंदसिंह के पुत्रों को भी किसी ब्राह्मण रसोईये ने धोखा दिया था। भाग्यवश वहां एक दूसरा सिक्ख सज्जन उपस्थित था जो सच्चा ग्रन्थी था और जिस का समस्त विद्वान सिक्ख इसी प्रकार आदर करते थे। उसने उसी समय उसका विरोध किया और उसे मतिदास आदि की अनेक उदाहरणों से उत्तर देकर चुप किया कि उसने गुरु को आश्रय दिया था और वह मृत्यु पर्यन्त सिक्खों के प्रति सत्य निष्ठ सिद्ध हुआ था क्या शिवाजी को अनेक इष्ट मित्रों तथा उनके पौत्र ने धोखा नहीं दिया था—और क्या पिसाल ने जो कि हिंदू ही था उन्हें धोखा नहीं दिया था ? परन्तु, क्या शिवाजी या उनके राष्ट्र ने अपनी जाति को त्याग दिया था और हिंदु नहीं रहे थे ? अनेक सिक्खों ने पहले तो वीर बन्दा के भाग जाने के समय और फिर खालसों की अंतिम लड़ाई के समय अंग्रेजों से वड़ा निर्दय पूर्ण व्यवहार किया था। स्वयं गुरुगोविन्द को कुछ सिक्खों ने घमासान युद्ध में छोड़ दिया था और इन सिक्खों का यही विश्वासघात कायरता से पूर्ण था जिसने शेर के हृदय वाले गुरु को यथाशक्ति धावा करने को उत्तेजित किया था—जिस

ने उस शापित ब्राह्मण को अपने पुत्रों को धोखा देने के लिए प्रेरित किया था अतएव यदि पिछले आघात के लिए हम हिंदू होने से रुकते हैं तो पहले आघात के लिए हमें सिक्ख होने से भी रुक जाना चाहिए।

हिंदुओं की अल्पसंख्यक जातियां और प्रमुख जातियां भी भिन्न रचना की भांति आकाश से नहीं गिरी थीं। वे क्रमिक विकास हैं जिनका आधार सार्वजनिक देश और एक सार्वजनिक संस्कृति है। तुम किसी भेड़ के बच्चे को पकड़कर उसके कच्छ और कृपाण बांधकर उसे शेर नहीं बना सकते। यदि गुरु को एक वीर योद्धा और शहीद पुरुषों का वर्ग बनाने में सफलता मिली है तो वह इसी कारण हो। वह जाति तथा देश जिसने उसे उत्पन्न किया—इस प्रकार बनने योग्य था। शेरों ही से शेर उत्पन्न होते हैं। फूल यह नहीं कह सकता " मैं खिलता हूं मुस्कराता हूं और सुगन्धि देता हूं, मैं केवल डण्ठल से ही उत्पन्न हुआ हूं, मुझे जड़ों से कुछ सरोकार नहीं है।" हम अपने बीज या अपने रक्त को अब अधिक समय तक अस्वीकार नहीं कर सकते। जैसे ही तुम किसी ऐसे सिक्ख को बतलाते हो जो अपने गुरु के प्रति सत्य रहा है तुम स्वभावतः एक ऐसे हिंदू को बतलाते हो जो अपने गुरु के प्रति सत्य रहा है, क्योंकि सिक्ख होने से पहिले वह हिंदू था और अब भी हिंदू ही है। जब तक हमारे सिक्ख भाई सिक्ख धर्म के सच्चे अनुयायी हैं उनको अवश्य ही हिंदू रहना चाहिए, क्योंकि तभी तक यह देश यह

'भारतभूमि आसिंधु सिंधुपर्यन्ता' उनकी पितृभू और पुण्यभू है। सिक्ख न रहने पर ही वे शायद हिंदू नहीं रह सकते।

हमने सिक्ख भ्रातृत्व का विस्तार से विवेचन किया है और वे सब प्रमाण और टिप्पणियां स्वभावतः अन्य अवैदिक मतों और धर्मों पर भी इस परिभाषा के अनुसार लागू हैं। उदाहरणार्थ देवसमाजी ईश्वर को अज्ञेय मानने वाले हैं किन्तु हिंदुत्व का इससे या नास्तिकवाद से कोई सम्बन्ध नहीं है। देवसमाजी इस देश को अपने पूर्वजों का देश मानते हैं—पितृभू और पुण्यभू मानते हैं अतएव हिंदु हैं। हां, इस सब के पश्चात् आर्यसमाजियों का उल्लेख करना असंगत है—उनके विषय में हिंदुत्व की सब विशेषताएँ इतनी अधिक लागू हैं कि वे हिंदुओं के भी हिंदु हैं। वास्तव में हम किसी ऐसे वर्ग का उल्लेख करने में असमर्थ हैं जो इस परिभाषा में न आसके।

केवल एक बात में कुछ वास्तविक कठिनता पड़ती है। उदाहरणस्वरूप क्या बहिन निवेदता (Sister Nivedita) हिन्दू हैं? यदि कोई छूट छुटाव (excemtion) इस नियम को सिद्ध करता है तो यहां ऐसा भी है। हमारी देशभक्ति और उच्चविचार वाली बहिन ने हमारे देश—आसिंधु सिंधुपर्यन्ता को पितृभू मान लिया है वह उसे पितृभू की भांति ही चाहती है। और यदि हमारा राष्ट्र स्वतन्त्र होता तो हम ऐसी आत्माओं को नागरिकता का अधिकार अवश्य प्रदान करदेते। अतएव कुछ सीमा तक पहली विशेषता उनके ऊपर लागू है। सार्वजनिक रक्त और

हिंदू पितृज की दूसरी विशेषता ऐसी घटनाओ में अवश्य ही नहीं मिलती। हिंदू-विवाह के संस्कार जो वास्तव में जैसा कि सर्वमान्य है, दो आत्माओं को एक में मिला देता है, इस अयोग्यता को दूर कर सकता है। किन्तु यद्यपि यह दूसरी विशेषता उनके ऊपर किसी भी प्रकार लागू नहीं होसकी तो भी हिंदुत्व की तीसरी मुख्य विशेषता उन्हे हिंदु मानने के लिए बाध्य करती है। क्योंकि उन्होंने हमारी संस्कृति को अपना लिया है और हमारे देश को पुण्य भू मान कर उसकी भूरी भूरि प्रशंसा की है। उन्होंने अपने को हिंदु समझा और अन्य सब विशेषताओं में यह सबसे प्रमुख और सच्ची परीक्षा है। किन्तु हमें यह नहीं भूल जाना चाहिए कि हिंदुत्व की विशेषताओं का उस भाव से निर्णय कर रहें जो भाव साधारणतया अधिकांश लोग समझते हैं। अतएव हमें कहना चाहिए कि कोई अहिंदु पैतृज हिंदुत्व मान लेने पर हिंदु होसकता है। स्वीकार होने पर यदि वह स्त्री या पुरुष हमारे देश को अपना देश समझता है और हिंदु से विवाह करता है, यानि हमारे देश को अपनी सच्ची पितृभू मानता है; और हमारी संस्कृति को अपनाकर हमारे देश को अपनी पुण्यभू मानकर उसकी प्रशंसा करता है। ऐसे दम्पति की सन्तान अन्य सब बातों के समान रहने पर निश्चय ही हिन्दू होगी। हमें अधिक विस्तार में जाने का अधिकार नहीं है।

किन्तु हिंदुओं के किसी भी मत के सिद्धान्तों को मानने लगने से कोई धर्म-परिवर्तित करने वाला विदेशी सनातनी, सिक्ख

या जैन माना जासकता है, और क्योंकि यह धर्म हिंदुओं द्वारा स्थापित और प्रकाशित हुए हैं, वह व्यक्ति भी हिंदूधर्म में सम्मिलित होकर धार्मिक दृष्टिकोण से भी हिंदू कहला सकता है। किन्तु यह समझलेना चाहिए कि किसी धर्म या संस्कृति को बदलने वाले पर हिंदुत्व की केवल एक ही विशेषता लागू है और यह इस अयोग्यता के कारण है कि साधारणतया लोग उसे ही हिंदु नहीं मानते जो हमारी जाति के धार्मिक विश्वासों को मानता है। बहिन निवेदिता या ऐनीबिसेन्ट के प्रति हमारी इतनी गहरी सहानुभूति है क्योंकि उन्होंने हमारे देश और संस्कृति को उच्च बनाने के लिए अनेक सेवाएँ की हैं और वे इतनी सहृदय और प्रेमासक्त हैं जितनी कि हमारी समस्त हिंदु जाति है; बहन निवेदिता या उनके समान कोई अन्य पुरुष भी जिस का हमारी जाति में इतना समान है वह निश्चय ही सरलता से हिंदु जाति में सम्मिलित कर लिए जाते हैं। किन्तु यह नियम के अनुसार किसी विशेष कारण से ही स्वीकार किया जासकता है। नियम न तो बहुत उदार और न कट्टर होने चाहिए। वह सब प्रमाण जो हमारी हिंदुत्व की परिभाषा पर लागू हैं यह विश्वास है कि उन्होंने यह सिद्ध कर दिया है कि इन दोनों आवश्यकताओं में न तो अव्याप्ति और न अतिव्याप्ति सन्निहित हैं।

— ८ —

अबतक हमने किसी भी प्रकार ऐसे विचारों का उपयोग नहीं किया है जो हमारी वास्तविक खोज को आघात पहुंचाते। किन्तु उसके अन्त में यह देखना भी असंगत न होगा कि वे गुण जिन्हें हम हिंदुत्त्व की विशेषताएं कहते हैं—कहां तक हमारी जाति में शक्ति, एकता और उन्नति को जागृत करने वाले हैं। क्या ये विशेषताएं किसी ऐसे गहरे, सुदृढ़ और विस्तृत आधार का निर्माण करती हैं कि जिसपर हिंदू जाति अपने भविष्य को निर्मित कर सकती है जो प्रबल से प्रबल विरुद्ध आंधियों का सामना करके उनहें दृढ़ता से हटा सकता है; या कि हिंदू जाति मिट्टी के पैरों पर खड़ी है ?

कुछ प्राचीन राष्ट्रों ने समस्त देश को एक सुरक्षित कोट बनाने के लिए विशाल दीवारें बनाई थीं। आज उनकी दीवारें मिट्टी में मिल गई हैं या उनमें कुछ यहां और कुछ वहां केवल भग्नावशेष ही रह गए हैं, और वह पुरुष जिनकी उन दीवारों ने रक्षा की थी, इतने लुप्त होगए हैं कि देखे भी नहीं मिलते। हमारे प्राचीन पड़ौसी—चीनियों ने कई पीढ़ियों तक महान परिश्रम करके अपने इतने बड़े साम्राज्य की रक्षा के लिए इतनी विस्तृत, इतनी ऊंची, इतनी सुदृढ़ दीवार का निर्माण किया था जो मानव-संसार में विलक्षण आश्चर्य समझी जाती है। किन्तु

वह भी अन्य मानव-आश्चर्यों की भान्ति अपने ही भार के कारण धराशायी होगई। परन्तु, प्रकृति की चहारदीवारी तो देखो ! ये हिमालय उस पुरुष की भान्ति जिसकी समस्त इच्छाएं पूर्ण हो चुकी हैं, अपने स्थान पर निश्चिन्त होकर किस प्रकार खड़े हुए हैं—वैदिक कवि ने भी उन्हें ऐसा ही देखा था और वैसे ही आज वे हमें दृष्टिगोचार होते हैं। यह हमारे क़िले की दीवारें ही हैं जिन्होंने इस विस्तृत महाद्वीप को सुखमय सुरक्षित कोट बना दिया है।

तुम अपनी बालटियों से अपनी खाइयों को भरते हो और उन्हें परिखा (पानी से भरी खाई) कहते हो। किन्तु यहां स्वयं वरुण देव के दर्शन करो जो एक हाथ से अन्य महाद्वीपों को एक ओर हटा रहे हैं और दूसरे से रिक्त स्थान को पानी से भर रहे हैं। यह हिंदमहासागर खाड़ियों के सहित हमारे देश की परिखा है।

यही हमारे सीमा प्रदेश हैं जो हमें अन्तर्प्रदेश तथा जल में घिरे हुए देश के सभी लाभ उपलब्ध करते हैं।

यह हमारी मातृभूमि ईश्वर की समृद्ध शाली पुत्री है। उसकी नदियां गहरी और सतत हैं। उसकी भूमि खेतिहर और खेत सुनहरी फसलों से सम्पन्न हैं। उसके जीवन की आवश्यक-ताएं थोड़ी हैं और उन्हें सुखप्रद प्रकृति इच्छानुसार उत्पन्न कर देती है। वह वनास्पति में समृद्ध है, पशुओं में समृद्ध है, वह

जानती है कि इस सबके लिए वह प्रकाश और ताप के सरल उद्गम—सूर्य की ऋणी है। वह बर्फिस्तानों को नहीं चाहती; वे और उनके जमे हुए अक्षांश सुरक्षित रहें। यदि ताप कहीं झुलसने वाला है तो शीत कहीं ठिठुरा देने वाला है। यदि शीत मानवी परिश्रम को उत्तेजित करता है तो ताप उसकी अधिक आवश्यकता को रोकता है। उसे सूखे हुए कण्ठ से बुझी हुई प्यास में अधिक आनन्द आता है। जिन्हें यह नहीं मिल सका है उन्हें इसके पाने पर आनन्दित होना चाहिए। किन्तु जिन्होंने प्राप्त कर लिया है—वे उसके मिल जाने से ही आनन्द उठा सकते हैं। बरफ़ की चादरों से लिपटा हुआ पिता टेम्स स्वतंत्र होकर अपने कार्य में तत्परता से जुटा हुआ है। किन्तु उसे घाटों पर भ्रमण करना और चन्द्रमा के प्रकाश से गंगा के चमकते पानी में नावों का चलना कितना अच्छा लगता है। हल, मोर, कमल, हाथी और गीता के सहित वह अपने पथ पर अग्रसर है यदि यही सत्य है तो शीत-अक्षांसों में क्या आनन्द मिलता होगा। वह जानती है कि वह अपने ही पथ पर सदैव नहीं चल सकती। उसके बाग़ हरे भरे और छाया प्रद हैं, उसके खेत अनाज से पूर्ण हैं, उसके जल मोती के समान स्वच्छ हैं, उसके पुष्प सुगन्धित हैं, उसके फल रस पूर्ण हैं और जड़ी बूटियां रोग विनाशक हैं। उसकी तूलिका उषा के रंगों में डूबी हुई है और उसकी वंशी गोकुल के रागों से अभि-गुंजित है। वास्तव में हिंद ईश्वर की ऐश्वर्य सम्पन्न पुत्री है।

चीनी और शायद अमेरिका वासियो को छोड़ कर न

अंग्रेज न फ्रांसिसी और न कोई और ही व्यक्ति किसी ऐसे देश को अपनाते हैं जो प्राकृतिक शक्ति और धनधान्य में सिंधुस्थान की समानता कर सके। एक देश—एक सामान्य घर, स्थायी और सुदृढ़ राष्ट्र की सर्वप्रथम और आवश्यक विशेषता है। और संसार के अन्य देशों की भांति हमारा देश ऐसी भूमि प्रदान करने की योग्यता में जो महान राष्ट्र की उन्निति के लिए सर्वथा उपयुक्त है किसी भी देश से दब नहीं सकता; हिंदु जिनका सर्वप्रथम सिद्धान्त अपनी पितृभूमि को प्यार करना है उनके इस प्यार में एक शक्तिशाली तांत्रिक बंधन है जो राष्ट्र को दृढ़ता से बांधकर उसे इस योग्य बना सकता है कि वह अपूर्व महान कार्यों को भी सम्पन्न कर सके।

हिंदुत्व की दूसरी विशेषता हमारी राष्ट्रीय एकता और महानता की गुप्त शक्तियों को और भी उच्चस्थान देती है। चीन को छोड़कर संसार का कोई भी देश ऐसी समान (Homogeneous) जाति से आबाद नहीं है जो संख्या में और शक्ति में इतनी प्राचीन और इतनी शक्तिशाली है।

अमेरिका वासी भी जो उत्तम भौगोलिक आधार और राष्ट्रीयता की दृष्टि से हमारे समान ही भाग्यशाली हैं—निश्चय ही कुछ पिछड़ गए हैं। मुसलमान कोई जाति नहीं हैं और न ईसाई ही। वे धार्मिक संघ हैं तौ भी कोई जातीय या राष्ट्रीय संघ नहीं हो सकते। किन्तु हम हिंदु जहां तक सम्भव हैं—तीनों साथ हैं और एक ही प्राचीन छत के निचे रहते हैं। हमारी जाति की

संख्यात्मक शक्ति हमारे लिए देन है जिसका कोई भी उच्च पारितोषिक नहीं होसकता।

और संस्कृति? अंग्रेज और अमरीका निवासी इस लिए आपस में सम्बन्धी हैं कि दोनों का शेक्सपीअर एक ही है। न केवल कालीदास या भासही—ऐ हिंदुओं तुम्हारी रामायण और महाभारत भी सार्वजनिक वस्तुए हैं—और वेद भी! अमरीका के बच्चों को जो राष्ट्रीय गीत सिखाए जाते हैं, उनमें से एक उनको अपने चिर आत्म-सम्मान की भावना से जागृत करता है जो उनके दो शताब्दियों के इतिहास में छिपा है। हिंदू अपने वर्षों को शताब्दियों में नहीं गिनते वरन् युगों में—कल्पों में, और आश्चर्य से पूछते हैं: "रघुपतेः क्व गतोत्तरकोशला। यदुपतेः क्व गता मथुरापुरी!!" वह आत्म प्रतिष्ठा की भावना को इतना जागृत नहीं करते जितना कि परस्पर सम्बन्ध की भावना को—जो कि स्वयं ही सत्य है। और इसी से वह रामसेज़ और नेबुचदनेज्ज़रों से अधिक जीवित रहा। यदि किसी राष्ट्र का विगत काल नहीं था तो भविष्य काल भी नहीं होगा, तो वह राष्ट्र जिसने वीरों और उनके पुजारियों की असीम आकाश-गंगा उत्पन्न की है और जिन्हें ग्रीस, रोम, पैरोहा और इन्कास की लड़ने वाली सेनाओं से लड़ने का ज्ञान था जो अब मर चुके हैं—उनका इतिहास पृथ्वी में अन्य पुरुषों से अधिक उनकी भविष्य महानता को भी निश्चय ही निर्धारित करता है।

संस्कृति के अतिरिक्त सार्वजनिक पुण्यभूमि का बंधन कभी

कभी मातृभूमि के बंधन से भी सुदृढ़ सिद्ध हुआ है। मुसलमानों को ही लो। उनके लिए मक्का देहली या आगरे से कहीं अधिक वास्तविक कट्टरता लिए हुए हैं। उनमें से कुछ तो इस बात को भी गुप्त नहीं रखते कि वे इस्लाम की महत्ता या अपने पैगम्बर के नगर को बचाने के लिए सम्पूर्ण भारत को भी त्याग सकते हैं। यहूदियों को लो: न तो ऐश्वर्यशाली शताब्दियां और न उन देशों के प्रति कृतज्ञता की भावना उन्हें अधिक और नहीं तो समान रूप से उन तमाम देशों से जिनमें उन्हें आश्रय मिला था—सम्बन्धित नहीं रख सकतीं। उनका प्रेम जैसा कि आवश्यक भी है उनके जन्म-देश और पैग़म्बर के देश में विभाजित है। यदि ज़ियोनिस्टों का स्वप्न सत्य समझा जावे—यदि पैलेस्टाईन यहुदी राज्य होजाता है और वह हमें यहुदी-मित्रों की भान्ति ही प्रसन्न रखता है तो वे मुसलमानों की भान्ति ही अपने हीतों को अमरीका या योरूप की मातृभूमि से अधिक अपनी पुण्यभूमि में रखेंगे और यहूदी राज्य और उनके अपनाए हुए देश में यदि युद्ध हो तो वे स्वभावतः, यदि सामुहिक रूप से वहां जाकर उसकी सहायता भी न करें तो यहुदी राज्य से सहानुभूति अवश्य रक्खेंगे। त्याग की ऐसी मुख्य मुख्य विशेषताओं के उदाहरणों से इतिहास भरापड़ा है। क्रुसेड्स भी उस आश्चर्यजनक प्रभाव को प्रमाणित करते हैं कि पुण्यभूमि जाति में, राष्ट्र में, और भाषा में नितान्त विभिन्न व्यक्तियों को भी एकत्रित करके दृढ़ता से बान्धे रखती है।

अतएव किसी राष्ट्र को पूर्ण एकता और सम्मिलन प्राप्त करने के लिए आदर्श (सर्वोत्तम) अवस्थाए वे होंगी—अन्य सब वस्तुएं समान होने पर—जो ऐसे व्यक्तियों में मिल सकती हैं जो उसी देश को चाहते हैं—जिसमें उनके पूर्वजों का एवं देवताओं और देवदूतों का, उपदेशकों और नेताओं का जन्म हुआ है और जिसके इतिहास की घटनाएं उनको पौराणिक गाथाएं हैं।

केवल हिंदु ही ऐसे व्यक्ति हैं जिन्हें यह सब आदर्श अवस्थाएं प्राप्त हैं जो एक साथ ही राष्ट्रीय एकता, सम्मिलन और महानता को उत्पन्न करती हैं। चीनी भी इस आशीर्वाद से वंचित हैं। केवल अरब और पैलेस्टाईन ही इस अनुपम लाभ को उपलब्ध कर सकते हैं, यदि यहूदी वहां अपने राज्य स्थापित करलें। किन्तु अरब किसी राष्ट्र की प्राकृतिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और संख्यात्मक आवश्यकताओं से नितान्त वंचित है। और यदि कभी ज्योनिस्टो के पैलेस्टाइन राज्य स्थापित करने का स्वप्न सत्य भी होजाता है तो भी वे इन षिरोषताओं से वंचित रहेंगे।

इंगलैण्ड, फ्रांस, जर्मनी, इटली, टर्की, फ़ारस जापान, अफ़गानिस्तान, मिश्र वर्तमान (क्योंकि उनके वंशज पैंटों और उनका मिश्र कभी का समाप्त हो चुका है) और अफ्रीका के अन्य राज्य, मेक्सिको, पीरू, चिली (इनसे छोटे राज्य और राष्ट्रों को छोड़ कर)—यद्यपि जाति विचार से कुछ न कुछ एक हैं तो भी हमसे भौगोलिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और संख्यात्मक विशेषताओं में कहीं पीछे हैं—यदि स्वीकृत मातृभूमि के एक

मात्र उदाहरण को छोड़ भी दिया जावे। अवशिष्ट राष्ट्रों में से योरूप में रूस, अमरीका में संयुक्त राज्य यद्यपि भ गोलिक दृष्टि से बराबर ही लाभ उठाते हैं तो भी अन्य सब राष्ट्रीय विशेषताओं में कहीं पीछे हैं। वर्तमान राष्ट्रों में चीन ही सब राष्ट्रों से अधिक हिंदुओं की भान्ति भौगोलिक, जातीय, सांस्कृतिक और संख्या की विशेषताओं में सम्पन्न है। पवित्र, पूर्ण और सार्वजनिक भाषा को अपनाने के कारण ही जहां तक राष्ट्रीय एकता की विशेषताओं का सम्बन्ध है अधिक भाग्यशाली हैं।

अतएव हिंदुत्व की वास्तविक विशेषताएं जैसा कि इस विवेचन से व्यक्त है—राष्ट्रीयता की भी विशेषताएं हैं। यदि हम चाहें तो हिंदुत्व की नींव पर हम पहिले से भी महान भविष्य का निर्माण कर सकते हैं—इतना महान जिसका संसार का कोई भी देश स्वप्न देख सकता है और हमारे विगत काल से भी महान हो सकता है। यदि हम अपनी सुविधाओं को योग्यता से उपयोग में लावें। हमें स्मरण रखना चाहिए कि बड़े बड़े संघ आज कल के प्रचलन हैं। राष्ट्र संघ (The League of Nations), शक्तियों की सन्धियां, इस्लाम धर्म (Pan Islamism), स्लेवी धर्म (Pan Slavism), पैनेथ्योधर्म (Pan-Theoism)—सब छोटी छोटी सत्ताएं एक बड़े संघ में सम्मिलत होने का प्रयत्न कर रही हैं जिससे वे शक्ति और अस्तित्त्व की रक्षा के लिए अधिक योग्यता से लड़ सकें। जिन्हें प्राकृतिक और ऐतिहासिक दृष्टि से गणनात्मक, भौगोलिक और जातिय सुविधा

प्राप्त नहीं हैं वे दूसरों की सुविधाओं में भाग ले रहे हैं। वे मनुष्य शोचनीय हैं जो इन सुविधाओं को स्वाभाविकता से प्राप्त करने पर भी उनसे लाभ नहीं उठाते या उनकी अवहेलना करते हैं। संसार के राष्ट्र आक्रमण के लिए किसी न किसी संघ में स्थान पाने की प्राणपन कोशिश कर रहे हैं;—हिंदुओं! क्या तुममें से भी कोई जैनी या समाजी या सनातनी या सिक्ख या अन्य कोई मत तुमसे अलग होसकता है या बाहर निकल कर प्राचीन, प्राकृतिक और क्रमिक संघ को जो इस समय प्रचलित है नष्ट कर सकता है?—वह संघ जो कागज़ के टुकड़ों से नहीं और न आवश्यकताओं के बन्धनों से ही बंधा हुआ है किन्तु रक्त, जन्म, और संस्कृति की गांठों से गठित है? यदि कर सकते हो तो उन्हें सुदृढ़ बनालो: वर्ण, रीति-रस्म, मत और विभागों के विघ्नों को नष्ट कर दो क्योंकि उनके उपयोग पूर्ण हो चुके हैं। सहभोज ही क्या?—किन्तु प्रान्त-प्रान्त में वर्ण-वर्ण में जहां कहीं प्रचलित नहीं हैं—अन्तर्विबाह को भी प्रोत्साहन मिलना चाहिए। किन्तु जहां पहिले ही से प्रचलित हैं जैसे सिक्ख और सनातनियों में, जैनी और वैष्णवों में, लिगांयत और अ-लिंगायतों में—वह हाथ कितना घातक होगा जो इनकी वैवाहिक ग्रन्थियों को काटता है। अमरीका का राज्य अपने अन्तिम प्रयत्न में एंग्लो—सेक्सन (Anglo Saxon) विभागों के भाग्य के साथ या तो उन्नत होगा या अवनत होगा। यही हिंदुओं पर भी लागू है। एक राष्ट्र होते हुए जिनके भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों काल हिंदुस्थान की भूमि को पितृभू और

पुण्यभू मानकर सम्बन्धित हैं—वे भारतीय राज्य की आधार शिला निर्मित करते हैं और सुरक्षित सेना का निर्माण करते हैं। अतएव भारतीय राष्ट्रीयता के दृष्टिकोण से भी हिंदुओं तुमको हिंदू राष्ट्रीयता को पुष्ट करके उसकी शक्ति को बढ़ा लेना चाहिए। अपने किसी अहिंदु देश भक्त का व्यर्थ सामना करने के लिए नहीं वरन् अपनी जाति और देश को उचित और आकस्मिक आत्मरक्षा के लिए, जिससे अन्य लोगों को उसे पराजित करना या वह धार्मिक आक्रमण करना असम्भव होजाए जो कि सब महाद्वीपों में होरहे हैं। जब तक भारत को या पृथ्वी की अन्य जातियां अलग अलग भारतीय संगठन या मानव संगठन नहीं करतीं—किन्तु सब केवल संकीर्ण जातीय या धार्मिक या राष्ट्रीय आधार पर आक्रमण या रक्षा करने की सन्धियों और सभाओं में व्यस्त हैं, तब तक, कम से कम तब तक, ऐ हिंदुओं उन नम्र ग्रन्थियों को सुदृढ़ बनालो जो स्नायुतन्तुओं की भान्ति तुम्हें एक सामाजिक जीवन में आबद्ध करती हैं। तुममें से वे जो विघातक प्रायस में उन ग्रन्थियों को काट डालने का साहस करते हैं और हिंदू नाम को परित्याग करने का भी साहस करते हैं तो उन्हें ऐसा करने को भूल पर महान हानि उठानी होगी और ऐसा करने से वे हमारी जातीय जीवन और शक्ति के स्वयं उद्गम से अलग होजावेंगे।

राष्ट्रीयता की केवल कुछ ही विशेषताओं ने जो हिंदुत्व की विशेषताएँ हैं स्पेन और पुर्तगाल जैसे छोटे छोटे राष्ट्रों को

संसार में सिंह के समान शक्तिशाली बना दिया है। किन्तु जब वे सब आदर्श अवस्थाएँ यहां उपलब्ध हैं तो मानव-संसार में ऐसी कौन बात है जिसे हिंदू नहीं कर सकते ?

बाईस करोड़ व्यक्ति भारत को अपने कार्यों का केन्द्र मान कर अपनी पितृभूमि के लिए-पुण्यभूमि के लिए-जिनके पीछे ऐसा उज्वल इतिहास है जो सार्वजनिक रक्त, सार्वजनिक संस्कृति में आबद्ध है, तमाम संसार को अपने आदेश दे सकते हैं। एक दिन आयेगा जब मानव जाति को हमारी सेना (बल) का सामना करना पड़ेगा।

यह बात भी प्रायः निश्चित है कि जब कभी भी हिन्दुओं की ऐसी स्थिति होजावेगी कि जब वे समस्त ससार को अपना आदेश देसकेंगे तो वह आदेश किसी प्रकार भी गीता तथा बुद्ध के सिद्धान्तों से भिन्न न होगा। वास्तव में एक हिन्दू पूर्णरूप से हिन्दू तभी होता है जब वह हिन्दू के साम्प्रदायिक रूप को छोड़देता है और शंकर के समान समस्त पृथ्वी को बनारस (वाराणसी मेदिनी!) समझता है और तुकाराम की भांति "आउचा स्वदेश। भुवन त्रयामध्यैंवास"—अर्थात्—मेरे देश की सीमाएँ सम्पूर्ण विश्व की सीमाएँ ही हैं कहने लग जाता है। वह संकुचित विचारों से रहित होकर 'वसुधैव कुटुम्बकम्' को अपना ध्येय बना लेता है।

❀ शमित्योम् ❀

मुद्रकः—

श्रीयुत इन्द्रप्रकाश बी० ए०,

हिन्दू मिशन प्रेस, रीडिंग रोड नई देहली।